CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्यानमाला–१

# धवल-जयधवल सार

व्याख्यानकर्ता

पण्डित जवाहरलाल शास्त्री

प्रकाशक

सि० पं० फूलचन्द्र शास्त्री फाउन्डेशन, रुड़की

के सहयोग से

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान

नरिया, वाराणसी–५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५५१३

श्री गणेश वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत
सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला–१
रजत जयन्ती वर्ष प्रकाशन

# धवल-जयधवल सार

व्याख्यानकर्ता
पण्डित जवाहरलाल शास्त्री

प्रकाशक
सि० पं० फूलचन्द्र शास्त्री फाउन्डेशन, रुड़की
के सहयोग से

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी–५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्यानमाला संयोजक :
डॉ० फूलचन्द्र जैन प्रेमी, वाराणसी

प्रकाशक :
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी – २२१००५

© श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी

प्रथम संस्करण, सितम्बर १९९६

मूल्य – रु० २५.००

मुद्रक :
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर, वाराणसी.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

**Under Shree Ganesh Varni Dig. Jain Granthmala Sidhantacharya Pt. Phoolchandra Shastri Memorial Lecture. Series-1**

# DHAWAL-JAIDHAWAL SĀRA

**By**

**Pt. Jawahar Lal Shastri, Bhinder.**

**Published by**

**Shree Ganesh Varni Dig. Jain Sansthan**

**Naria Varanasi.**

**With the help of**

**Sidhantacharya Pt. Phool Chandra Shastri Foundation, Roorkee**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

**Lecture Series Convener**
**Dr. Phoolchandra Premi, Varanasi.**

**Published by**
**Shri Ganesh Varni Dig. Jain Sansthan, Varanasi.**

**First Edition, September 1996**

**Price : Rs. 25.00**

**Printed at**
**Vardhman Mudranalaya,**
**Jawahar Nagar, Varanasi-10.**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# संयोजकीय

यह प्रसन्नता का विषय है कि श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान की ओर से सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत आयोजित व्याख्यान अब सार्वजनीन उपयोगिता की दृष्टि से "धवल-जय धवल सार" नाम से पुस्तकाकार रूप में आपके सम्मुख हैं।

प्रस्तुत व्याख्यान जैनधर्म और सिद्धान्त तथा करणानुयोग के विशिष्ट विद्वान् पं० जवाहरलाल जी, भीण्डर (उदयपुर-राजस्थान) ने संस्थान भवन में दिनांक २९ से ३१ अगस्त १९९३ को प्रस्तुत किये थे। इस प्रथम व्याख्यानमाला का उद्घाटन सुप्रसिद्ध विद्वान् पद्मभूषण पं० बलदेव उपाध्याय ने किया था। वैदिक परम्परा के इन्हीं उत्कृष्ट विद्वान् ने इस बात को अपने उद्घाटन भाषण में खुलकर कहा था कि इस देश का भारत नाम प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम से ही प्रचलित हुआ। साथ ही "भारत" नाम के पूर्व इस देश का सर्व प्राचीन नाम "अजनाभवर्ष" भी ऋषभदेव के पिता के नाम पर प्रचलित था, जिसका उल्लेख प्राचीन शास्त्रों में मिलता है।

प्रस्तुत व्याख्यानों में यद्यपि हिमालय जैसे विशाल सिद्धान्त ग्रन्थों के सभी विषय तो नहीं आ सके किन्तु उनके कुछ प्रमुख विषयों को विद्वान् वक्ता ने जिस प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है, इससे उनके इन सिद्धान्त विषयों के ज्ञान की गहनता और सूक्ष्मता का पता चलता है। निरन्तर अस्वस्थता और कृशकाय आदि बाधाओं के बावजूद उनके अन्दर क्षयोपशम के साथ ही अगाध दृढ़ता और श्रद्धा विद्यमान है। श्रद्धेय पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री से भी आपको इन सिद्धान्त ग्रन्थों का साक्षात् अध्ययन करने और स्वाध्याय के दौरान समागत शंकाओं का समाधान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत व्याख्यानों का संबंध मूलतः शौरसेनी प्राकृत भाषा के श्रेष्ठ मूल जैनागम से है। इनमें प्रथम शती के आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि द्वारा रचित "षट्खण्डागम" पर आचार्य वीरसेन स्वामी (नवीं शती का पूर्वार्द्ध) ने मणिप्रबाल न्याय से प्राकृत-संस्कृत मिश्रित भाषा में बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशाल "धवला" नामक टीका लिखी तथा इन्हीं ने आचार्य गुणधर (विक्रम पूर्व प्रथम शती) द्वारा लिखित कसाय पाहुड सुत्त तथा चूर्णि सूत्रों पर "जयधवला" नामक विशाल टीका लिखी। यह टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है। आ० वीरसेन इस टीका का प्रारम्भिक भाग अर्थात लगभग बीस हजार श्लोक प्रमाण लिख पाये थे कि इनका स्वर्गवास हो गया जिसे इनके सुयोग्य शिष्य आचार्य जिनसेन (नवीं शती का उत्तरार्द्ध) ने पूरा किया।

इतने महान् और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थों और इनकी विशाल टीकाओं के इने-गिने विद्वानों में पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री का नाम अग्रणी रहा है। जिन्हें इन दुरूह सिद्धान्त ग्रन्थों का तलस्पर्शी ज्ञान था और जिन्होंने इन महान् ग्रन्थों और इनकी टीकाओं की हृदयस्पर्शी व्याख्या तथा अनुवाद आदि कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में जिस उत्कृष्टता और प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया है, इसके लिए हम सभी युगों-युगों तक उनके आभारी रहेंगे।

कटनी (मध्य प्रदेश) में दि० २५-१०-९१ को स्व० श्रद्धेय पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के सानिध्य और श्रीमान् स्व० सवाई सिंघई धन्यकुमार जी जैन की अध्यक्षता में संस्थान की बैठक में इस व्याख्यानमाला के प्रतिवर्ष आयोजन का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था। तब से अब तक इसके अन्तर्गत अनेक विद्वानों के व्याख्यान हो चुके हैं। इनके प्रकाशन की योजना जब बनी तब संस्थान के उपाध्यक्ष एवं पं० फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन, रुड़की के अध्यक्ष बंधुवर डॉ० अशोक कुमार ने फाउण्डेशन के आर्थिक सहयोग से इनके प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की इसके लिए संस्थान फाउण्डेशन तथा आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

इस व्याख्यानमाला के आयोजन एवं प्रकाशन में संस्थान के समस्त अधिकारियों के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

*वाराणसी.*
*अष्टाह्निका पर्व*
२५-७-१९९६

**फूलचन्द्र जैन प्रेमी**
**उपाध्यक्ष**
संयोजक, व्याख्यानमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# विषय-सूची


१. स्व० पं० फूलचन्द्र शास्त्री व्यक्तित्व/कृतित्व — १

२. पण्डित जी के धवल, जयधवल तथा महाधवल का वर्ण्य विषय — ७

(क) धवल आदि के अमृत बिन्दु — १०

i. धवल-१ से धवल १६ तक — १०-२२

ii. धवल-२ — ११

iii. धवल-३ — ११

iv. धवल-४ — १२

v. धवल-५ — १३

vi. धवल-६ — १३

vii. धवल-७ — १४

viii. धवल-८ — १६

ix. धवल-९ — १६

x. धवल-१० — १७

xi. धवल-११ — १८

xii. धवल-१२ — १९

xiii. धवल-१३ — १९

xiv. धवल-१४ — २०

xv. धवल-१५ — २१

xvi. धवल-१६ — २२

(ख) महाधवल पु० १ — २२

महाधवल पु० २ — २३

(ग) महाबन्ध पु० ४-६ — २३-२५

(घ) जयधवल पु० १-१६ — २५-३१

३. व्याख्यान - २

आयुकर्म : एक अनुशीलन — ३२


Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

i. आयुकर्म का लक्षण ३२
ii. आयुकर्म के भेद व बन्ध-उदय ३२
iii. आयु बन्ध का कारण ३३
iv. गतियों में आयु परिमाण ३४
v. आयु सम्बन्धी विशिष्ट नियम ४१
vi. समीक्षा ४८
(क) कदलीघात के लिए दो बार आयु बंध नहीं होता - वीरसेन स्वामी का मत ५४
४. व्याख्यान - ३
१. क्षायिक समकित ५९
(क) क्षायिक सम्यक्त्व ५९
(ख) स्वामित्व ६०
(ग) क्षायिक समकिती के भव ६०
(घ) क्षायिक सम्यक्त्व का काल ६१
(ङ) बद्धायुष्क क्षायिक समकिती का जन्म ६१
(च) पंचमकाल में क्षायिक समक़ित नहीं ६२
(छ) क्षायिक सम्यक्त्वी संयतासंयत कौन ६२
(ज) स्त्रियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता ६२
२. क्षायिक समकिती उत्तमभोग भूमि में ही उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। ६३
३. क्षायिक समकित - सब दिन एक समान ७०
व्याख्यान - ४
मेरी कतिपय शंकाएँ/गुरुवर्य ७५
श्री पं० फूलचन्द्र जी के समाधान
पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री के समाधान ८४

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# पण्डित जी एवं धवल, जयधवल तथा महाधवल का वर्ण्य विषय एवं सार.

## स्व. पं. फूलचन्द्र सि. शास्त्री व्यक्तित्व/कृतित्व

### जीवन-झांकी एवं व्यक्तित्व -

१. जन्म - वैशाख कृष्णा ४, वि.सं. १९५८, ईस्वी का दिनांक : ११-४-१९०१ ई.।

२. जन्म स्थान - सिलावन (बुन्देलखण्ड), यह गांव ललितपुर से १६ कि.मी. दूर है।

३. पितृ-नाम - सिंघई दरयावलाल जी, वंश - बरया

४. मातृ-नाम - जानकी बाई

५. पत्नी का नाम - पुतली बाई

६. गुरु (शिक्षा गुरु) - पं. देवकीनन्दन जी सि. शास्त्री, पं. बंशीधर जी न्यायालंकार, पं. माणिकचन्द्र जी कौन्देय न्याया., पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी आदि

७. अध्ययन - न्याय साहित्य सिद्धान्तशास्त्री तक। व्याकरण में मध्यमा।

८. पण्डित जी के पुत्र - एकमात्र प्रो. डॉ० अशोक जैन, पुत्रवधू नीरजा (एम.एस.सी.), पुत्रियाँ - डॉ० शांति जैन, श्रीमती सुशीला जैन, श्रीमती पुष्पा जैन

९. पण्डित जी के पौत्र - चि. अनिमेष, चि. नमन

१०. पण्डित जी का स्वर्गप्रयाण - ३१-८-९१ ईस्वी : प्रातः १०.३० बजे, रुड़की (हरिद्वार)

११. जीवन-यात्रा - तीन-चार वर्ष की वय में आँखों की पीड़ा। गुर्जर स्त्री गीजरन बाई की सेवा से लाभ। खजूरिया में प्राइमरी पाठशाला में पहली कक्षा तक अध्ययन। कक्षा में सर्वप्रथम श्रेणि से उत्तीर्ण। फिर अपनी मौसी के पुत्र रज्जु लाल बरैया के पास 'तत्त्वार्थसूत्र' पढ़ना सीखा। बंबई में बहिन के यहाँ 'भक्तामर' पढ़ना सीखा। यह सन् १९१५-१६ की बात है। १६ वर्ष की आयु में सर सेठ सा. के विद्यालय में (इन्दौर) पं. मनोहरलाल जी तथा अमोलकचन्द्र जी के पास एक-डेढ़ वर्ष तक संस्कृत तथा छहढाला पढ़े। इस समय आपकी पोशाक पैण्ट कोट कमीज बेल्ट तथा हाथ में छड़ी थी (अंग्रेज अफसर के समान)। फिर साढूमल में पं. घनश्यामदास जी से मध्यमा तक अध्ययन किया। सन् १९२० से ही आप राष्ट्रिय क्षेत्र में आए, स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने लगे। फिर मुरैना में आपने शिक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्राप्त की। जहाँ पं. जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री तथा स्व. कैलाशचन्द्र सि. शास्त्री आपके सहाध्यायी थे तथा स्व.पं. बंधीधर जी न्यायालंकार आपके अध्यापक थे। फिर बनारस में २-३ मास तक सेवा की, २५/- मासिक में। फिर इनका विवाह हुआ, पुतली बाई के साथ। बाद में साढूमल विद्यालय में धर्म प्रधानाध्यापक बने। फिर १९२४ ई. से १९२८ तक बनारस में धर्माध्यापक रहे। फिर बीना में धर्माध्यापक बने। वहीं रहते कांग्रेस आन्दोलन में भी सम्मिलित होते रहे। बीना के बाद ६ वर्ष नातेपुते (सोलापुर) रहे। वहाँ भी रहते हुए आप कांग्रेस कमेटी के सदस्य होने से तत्संबंधी क्रियाकलापों में भी लिप्त रहे। वहीं पर आपने शान्ति सिन्धु पत्रिका का दो वर्ष तक संपादन/प्रकाशन किया। सन् १९३६-३७ में (वि.सं. २४६३) द्रव्यमन/भावमन संबंधी विवाद सुलझाया। नातेपुते से बीना आए। फिर अमरावती जाकर आपने धवल पु. १ का अनुवाद किया। चार पुस्तकों का प्रकाशन आपके वहाँ रहते हुआ। सन् १९३८ में गजरथ विरोधी आंदोलन भी आपने प्रारंभ किया। इसके लिए आपने केवलारी में उपवास भी किया। भारत छोड़ो आन्दोलन में आप झांसी जेल में भी ४१ दिन तक रहे।

१९४१ ई. में बनारस आकर आप ने कषायपाहुड (जयधवला) का सम्पादन प्रारंभ कर दिया। इसी बीच ऐसी भी स्थिति आई कि पं.सा. लिवर की व्याधि से पीड़ित हुए। अर्थ विपन्नता वश गहने बेच कर आपने काम चलाया। पूज्यपाद बड़े वर्णी जी ने इस आपत्तिकाल में आपको बड़ा ही सहयोग दिया।

फिर एक समय षट्खण्डागम सत् प्ररूपणा के ९३वें सूत्र में संजद(प्रमतसंयत) पद को लेकर विवाद चला। यह पद वहाँ नहीं होना चाहिए, इस पक्ष में पं. हीरालाल सिद्धान्त-शास्त्री, पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. रामप्रसाद सि. शास्त्री आदि थे। संजद पद होना चाहिए, इस पक्ष में गुरुजी, पं. फूलचन्द्र जी, पं. कैलाशचन्द्र जी तथा बंशीधर जी न्यायालंकार थे। इस विवाद ने बहुत बड़ा रूप लिया था। अंत में पं. फूलचन्द्र जी के पक्ष की बात ही सत्य साबित हुई।

इसके बाद आपने महाधवला का सम्पादन अनुवाद कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। सन् १९४९ से ५१ तक आपने भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित मासिक पत्रिका "ज्ञानोदय" का भी सम्पादन किया। अपने जीवनदाता पूज्य महापुरुष १०५ बड़े वर्णी जी के स्मारक के रूप में आपने गणेशवर्णी ग्रन्थमाला की स्थापना की जो आज गणेशवर्णी शोध संस्थान के नाम से विख्यात है। सन् १९४६ में आपने ललितपुर में गणेशवर्णी इण्टर कॉलेज की स्थापना में योग दिया। बाद में जयपुर खानिया तत्त्वचर्चा हुई, जिसमें आप अग्रणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


विद्वान् के रूप में रहे। फिर यह चर्चा इन्हीं के द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित भी हुई।

धवल, महाधवल का कार्य आपने १९५८ ई. में पूरा किया, तथा जयधवल का कार्य आपने जून, १९८८ में पूरा कर दिया।

मेरा सौभाग्य है कि इस पूर्णिका में संशोधक के रूप में मैं भी शामिल हुआ तथा गुरु स्व. रतनचन्द्र मुख्तार द्वारा प्रदर्शित सूक्ष्मतम सैद्धान्तिक संशोधन भी इसमें गुरुजी पं. फूलचन्द्र ने लिए। जयधवल १६ के अन्त में प्रदत्त १६ भागों के शुद्धाशुद्धपत्रक में स्व.ब्र. रतनचन्द्र मुख्तार के द्वारा दर्शित अशुद्धि शुद्धि ६४८ तथा मेरे द्वारा दर्शित शुद्धाशुद्ध २१३ मुद्रित हुए हैं। इसी विशाल एवं सूक्ष्म शुद्धिपत्रक को तैयार करने हेतु मैं मार्च ८८ ई. में गुरुजी के पास हस्तिनापुर गया था तथा १० दिन वहाँ रहा था। गुरुजी को अब (फरवरी ८८ में) सुनाई देना भी मन्द पड़ गया था तथा स्वास्थ्य भी गिरा-गिरा सा रहने लग गया था। स्मृति बहुत शिथिल हो गई थी। साथ ही माताजी भी वृद्ध, अन्धी तथा फ्रैक्चरवश स्वयं चलने में असमर्थ हो चुकी थीं। मैं देख-देख कर रोता था।

इसके सिवा स्व. गुरुजी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मुझे अक्टु. सन् ८१ में बनारस में, जून ८४ में जबलपुर वाचना में तथा अप्रेल से जून ८७ में सम्पन्न ललितपुर वाचना में भी क्रमशः प्राप्त हुआ था। अतः मैं अपने आपको भाग्यशाली मानता हूँ। आज जो कुछ मैं हूँ वह स्व.ब्र. रतनचन्द्र मुख्तार (सहारनपुर) तथा स्व. गुरु पं. फूलचन्द्र जी की ही परम कृपा का फल है।

११. **अवसान** - जिनवाणी की सम्पूर्ण मनोयोग से सेवा करते-करते वह दुबला-पतला-लंबा व वृद्ध, धोती जब्बे वाली देह में स्थित महात्मा, आखिर दि. ३१-८-९१ को प्रातः १०.३० बजे पर इस संसार से चल बसा। आपके चरम दिनों में आपके पुत्र डॉ० अशोक जी तथा पुत्रवधू श्रीमती नीरजा ने पर्याप्त सेवा की थी, इसमें शंका को कोई अवकाश नहीं है। पूज्य गुरुजी अपने पुत्र में उन श्रेष्ठ संस्कारों को छोड़ गए हैं जिनके फलस्वरूप आज भी डॉ० अशोक जी उनकी स्मृति में जिनवाणी की ज्योति जगाने में बराबर तत्पर हैं।

पं.सा. बड़े ही सज्जन, सरल तथा सादे जीवनमय थे। झगड़ों से दूर तथा आगम-सेवा में अनवरत अनुरक्त रहते थे। विस्तृत व्यक्तित्व उनके अभिनन्दन ग्रन्थ से ज्ञातव्य है।

**प्रमुख सम्मान व पुरस्कार**

१. सन् १९६२ में जैन सिद्धान्त भवन, आरा की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में बिहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


के तत्कालीन राज्यपाल डॉ० अनन्त शयनम अयंगार द्वारा "सिद्धान्ताचार्य" की उपाधि प्रदान की गई ।

२. सन् १९७४ में भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव पर वीर-निर्वाण भारती द्वारा तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० वी.डी. जत्ती के करकमलों से "सिद्धान्तरत्न" की उपाधि प्रदान की गई ।

३. सन् १९८७ में अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासंघ द्वारा श्री महावीरजी में चांदी का प्रशस्ति पत्र भेंट किया गया ।

४. प्रथम राष्ट्रीय प्राकृत सम्मेलन, बैंगलोर, १९९० के अवसर पर प्राकृत ज्ञान भारतीय पुरस्कार प्रदान किया गया ।

५. अखिल भारतवर्षीय मुमुक्षु समाज द्वारा जयपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा १९९० के अवसर पर एक लाख रुपए की राशि से सम्मानित किया गया ।

६. सन् १९८५ में १०८ आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के सान्निध्य में आयोजित एक समारोह में एक बृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर सम्मान किया गया ।

**संस्थापित संस्थाएँ**

१. अन्यतम संस्थापक तथा कार्यकारी प्रथम संयुक्त मंत्री, १९४४ अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद

२. संस्थापक सदस्य एवं मंत्री, १९४६, श्री सन्मति जैन निकेतन, नरिया, वाराणसी

३. संस्थापक सं. मंत्री एवं ग्रन्थमालासंपादक, १९४४, श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी-५

४. संस्थापक एवं सदस्य, १९४६, श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन इंटर कॉलेज, ललितपुर, उ.प्र.

५. अध्यक्ष, १९५५, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद, द्रोणगिरि

६. संस्थापक, १९७१, श्री गणेशवर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान, नरिया, वाराणसी-५

**संपादित पत्रिकाएँ :-**

१. शान्ति-सिन्धु - आचार्य शान्ति सागर सरस्वती भवन, नातेपुते (सोलापुर), सन् १९३५-३७

२. ज्ञानोदय - भारतीय ज्ञानपीठ, सन् १९४९-५२ वाराणसी, १९४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**मौलिक कृतियाँ**

१. जैनधर्म और वर्ण-व्यवस्था - भारतवर्षीय दि. जैन परिषद, पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९४५

२. विश्वशान्ति और अपरिग्रहवाद - श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९४९

३. जैनतत्त्वमीमांसा - अशोक प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, १९६० (पृ. ३१५) संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण, पृ. ४२२, अशोक प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, १९७८

४. वर्ण, जाति और धर्म - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६३, द्वितीय संस्करण, १९८९ (पृ. ४५५)

५. जैनतत्त्व-समीक्षा का समाधान - पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, १९८७ (पृ. २१४)

६. अकिंचित्कर : एक अनुशीलन - अशोक प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, १९९० (पृ. ११०)

७. परवार जाति का इतिहास - प्रकाशक - परवार सभा, जबलपुर, १९९२

**शंका-समाधान**

८. जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा, पुस्तक १- पं. टोडरमल ग्रन्थमाला, जयपुर, १९६७ (पृ. ३७५)

९. जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा, पुस्तक २- पं. टोडरमल ग्रन्थमाला, जयपुर, १९६७ (पृ. ४७१)

**संपादित/अनुवादित/व्याख्यायित ग्रन्थ**

१०. प्रमेय रत्नमाला - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, सन् १९२८

११. आलाप-पद्धति - श्री सकल दि. जैन पंचान, नातेपुते (सोलापुर) सन् १९३४

१२. षट्खंडागम (धवला) - भाग १-१६, जैन दर्शन के सिद्धान्त ग्रंथ, आकार २०x३० से.मी., लगभग ८००० पृष्ठ, प्राचीन ताड़पत्रीय पांडुलिपियों के आधार पर पहली बार प्रकाशित, सहसंपादन तथा ६ भागों का अनुवाद, जैन साहित्योद्धारक फंड, विदिशा तथा जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर द्वारा प्रकाशित, सन् १९३९-५९ तथा १९७३-१९९०, अनेक भागों के संशोधित संस्करण भी प्रकाशित

१३. महाबंध - भाग २-७, जैन दर्शन के सिद्धांत ग्रन्थ, आकार २० × ३० से.मी. लगभग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



३००० पृष्ठ ताड़पत्रीय पांडुलिपियों के आधार पर पहली बार प्रकाशित, संपादन तथा अनुवाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सन् १९४४-१९७०

१४. कषायपाहुड (जय धवला) - भाग १-१६, जैन दर्शन के सिद्धान्त ग्रन्थ, आकार २०×३० से.मी. लगभग ८००० पृष्ठ, प्राचीन ताड़पत्रीय पांडुलिपियों के आधार पर पहली बार प्रकाशित, मूल प्राकृत से अनुवाद तथा संपादन, भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासंघ, मथुरा द्वारा प्रकाशित, सन् १९४१-८२, अनेक भागों के संशोधित संस्करण भी प्रकाशित

१५. सप्ततिका प्रकरण - हिन्दी अनुवाद सहित, आत्मानन्द जैन प्रचारक पुस्तकालय, आगरा, १९४८

१६. तत्त्वार्थसूत्र - संपादन और हिन्दी विवेचन, पृ. ४००, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९५८। नया संधोधित संस्करण, श्री गणेशवर्णी संस्थान, नरिया, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, १९९१

१७. सर्वार्थसिद्धि - आकार २०×३० से.मी., पृ. ५००, विस्तृत प्रस्तावना तथा टिप्पण के साथ, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९६०

१८. पंचाध्यायी - आकार २०×३० से.मी., पृ. ५०० विस्तृत प्रस्तावना के साथ संपादन, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रंथमाला, वाराणसी, १९६०

१९. ज्ञानपीठ पूजांजलि - पृ. ५५०, सहसंपादन तथा अनुवाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९६०

२०. समयसार कलश, पृ. ४५०, भावार्थ सहित, श्री दि. जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़, १९६४

२१. श्री कानजी स्वामी अभिनन्दन ग्रंथ - संपादन, हिंदी विभाग, पृ. ६४४, दि. जैन मुमुक्षु मंडल, बंबई, १९६४

२२. सम्यग्ज्ञान दीपिका - सम्पादन व अनुवाद, दि. जैन मुमुक्षु मंडल, भावनगर, १९७०

२३. लब्धिसार - क्षपणासार - श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, १९८०

२४. ज्ञानसमुच्चयसार - विस्तृत प्रस्तावना के साथ, सागर, १९७४

२५. आत्मानुशासन - पंडित टोडरमल की टीका एवं प्रस्तावना के साथ, श्री गणेशवर्णी संस्थान, नरिया, वाराणसी, १९८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



५५१३

व्याख्यान-१

# पण्डित जी के धवल, जयधवल तथा महाधवल का वर्ण्य विषय

धवला टीका का मूल आधार ग्रन्थ षट्खण्डागम है। इसकी टीका "धवला" है। यह संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा में दि. ८-१०-८१६ ई. बुधवार को पूरी हुई थी। इसका परिमाण ७२,००० श्लोक प्रमाण है। भगवद् वीरसेन स्वामी ने यह टीका लिखी थी। वर्तमान में इसका हिन्दी अनुवाद ७००० पृष्ठों में, १६ भागों में हुआ है। इस कार्य में गुरुजी पं. फूलचन्द्र जी को करीब २० वर्ष (सन् १९३८ से १९५८) लगे। अन्य भी विद्वान् आपके साथ इस पुनीत कार्य में थे। सभी के योग से यह कार्य पूर्ण हुआ। परन्तु सर्वाधिक योग आपका ही रहा।

धवला के वर्तमान में उपलब्ध १६ भागों में से प्रथम छह भागों में षट्खण्डागम के जीवस्थान नामक प्रथम खण्ड की टीका है। जिनमें प्रथम पुस्तक में गुणस्थानों तथा मार्गणास्थानों का विवरण दिया गया है। गुणस्थान तथा मार्गणा सम्पूर्ण धवल, जयधवल, महाधवल का मूल हार्द है। द्वितीय भाग में गुणस्थान जीवसमास पर्याप्ति आदि २० प्ररूपणाओं द्वारा जीव की परीक्षा की गई है। तीसरी पुस्तक द्रव्यप्रमाणानुगम है, जिसमे यह बताया गया है कि ब्रह्माण्ड में सकल जीव कितने हैं। इसमें भिन्न-भिन्न अवस्थाओं, गतियों आदि में भी जीवों की संख्याएं गणित शैली से सविस्तार तथा सप्रमाण बताई गई हैं। चौथी पुस्तक में क्षेत्र स्पर्शन कालानुगम द्वारा बताया गया है कि सकल ब्रह्माण्ड में जीव निवास करते हुए, विहार आदि करते हुए कितना क्षेत्र वर्तमान में तथा अतीत में छूते हैं या छू पाए हैं। गुणस्थानों तथा मार्गणाओं में से प्रत्येक अवस्था वाले जीवों का आश्रय कर यह प्ररूपण किया गया है। कालानुगम में मिथ्यादृष्टि आदि जीवों की काल-अवधि सविस्तार प्ररूपित की गई है। पाँचवें भाग-अन्तर भाव अल्पबहुत्वानुगम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



में बताया है कि - (१) विवक्षित गुणस्थान को छोड़कर अन्यत्र जाकर पुनः उसी गुणस्थान में जीव कितने समय बाद आ सकता है, (२) कर्मों के उपशम क्षय व क्षयोपशम से होने वाले जो परिणाम हैं, उन्हें भाव कहते हैं। वे भाव मिथ्यादृष्टि आदि में तथा नरक गति आदि में कैसे होते हैं, तथा (३) विभिन्न गुणस्थानादिक में जीवों की हीनाधिक संख्या कैसी है। छठा भाग चूलिका स्वरूप है। इसमें प्रकृति समुत्कीर्तन, स्थान समुत्कीर्तन, तीन दण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्यस्थिति, सम्यक्त्वोपत्ति तथा गति आगति नामक नौ चूलिकाएं हैं। इनमें से प्रथम दो चूलिकाओं में कर्मों के भेदों और उनके स्थानों की प्ररूपणा है। सम्यग्दर्शन के सम्मुख जीव किन-किन प्रकृतियों को बाँधता है इसके स्पष्टीकरणार्थ ३ दण्डक स्वरूप ३ चूलिकाएँ हैं। कर्मों की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति को छठी व सातवीं चूलिकाएँ बताती हैं। इस प्रकार पूर्व की सात चूलिकाओं द्वारा कर्म का विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्तिम दो चूलिकाओं द्वारा सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति तथा जीवों की गति-आगति (जाना-आना) बताई गई है। इस प्रकार छठे भाग में मुख्यतः कर्म प्रकृतियों का वर्णन है। सातवें भाग में षट्खण्डागम के दूसरे खण्ड क्षुद्रक बन्ध की टीका है। जिसमें संक्षेपतः कर्मबन्ध का प्रतिपादन किया गया है। आठवें भाग में षट्खण्डागम के तृतीय खण्ड बन्धस्वामित्व विषय की टीका पूरी हुई है। कौन सा कर्मबन्ध किस गुणस्थान तथा मार्गणा में सम्भव है, यह इसमें वर्णित है। इसी सन्दर्भ में निरन्तर बन्धी, सान्तर बन्धी, ध्रुवबंधी आदि प्रकृतियों का खुलासा तथा बन्ध के हेतुओं (प्रत्ययों) का खुलासा है। अन्य भी विस्तार है। नवम भाग में वेदनाखंड सम्बन्धी कृति अनुयोगद्वार की टीका है। वहाँ आद्य ४४ सूत्रों की टीका में विभिन्न ज्ञानों की विशद प्ररूपणा की है। फिर सूत्र ४५ से अन्त तक कृति अनुयोगद्वार का विभिन्न अधिकारों में प्ररूपण किया गया है। दशवें भाग में षट्खण्डागम के वेदना खण्ड विषयक वेदना-निक्षेप, नयविभाषणता, नामविधान तथा वेदना द्रव्य विधान अनुयोगद्वारों का सविस्तार विवेचन है। ग्यारहवें भाग में वेदना-क्षेत्रविधान तथा वेदनाकाल विधान का विभिन्न अनुयोगद्वारों (अधिकारों द्वारा वर्णन करके फिर दो चूलिकाओं द्वारा अकथित अर्थ का प्ररूपण तथा प्ररूपित अर्थ का विशिष्ट खुलासा किया है। बारहवें भाग में वेदना भाव विधान आदि १० अनुयोगद्वारों द्वारा गुणश्रेणिनिर्जरा तथा अनुभाग से सम्बन्धित सूक्ष्मतम, विस्तृत तथा अन्यत्र अलभ्य, ऐसी प्ररूपणा की गई है। इस तरह वेदना अनुयोगद्वार के १६ अधिकार तीन पुस्तकों (१०-११-१२वीं) में सटीक पूर्ण होते हैं। षट्खण्डागम के पाँचवें खण्ड की टीका धवल पु. १३, १४ यानी तेरहवें चौदहवें भाग में पूर्ण हुई है। जिनमें तेरहवें भाग में स्पर्श, कर्म व प्रकृति, अनुयोगद्वार है। स्पर्श अनुयोगद्वार का १६ अवान्तर अधिकारों द्वारा विवेचन करके फिर कर्म अनुयोगद्वार का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अकल्प्य १६ अनुयोगद्वारों द्वारा वर्णन करके तत्पश्चात् अंतिम प्रकृति अनुयोगद्वार में ८ कर्मों का सांगोपांग वर्णन है । चौदहवें भाग में बन्धन अनुयोगद्वार द्वारा बन्ध बन्धक बन्धनीय (जिसमें २३ वर्गणाओं का विवेचन है तथा पाँच शरीर की प्ररूपणा भी है । तथा बन्धविधान इसका वहाँ प्ररूपण नहीं है, मात्र नामनिर्देश है) इन चार विभागों द्वारा प्ररूपणा की है । अन्तिम दो भागों (पन्द्रहवें-सोलहवें भागों) द्वारा शब्द ब्रह्म, लोकविज्ञ, मुनिवृन्दारक भगवद् वीरसेनस्वामी ने सत्कर्मान्तर्गत शेष १८ अनुयोगद्वारों (निबन्धन प्रक्रम आदि) की विस्तृत विवेचना की है ।

इस तरह १६ भागों (भाग अर्थात् पुस्तक) में धवला टीका सानुवाद पूरी होती है ।

षट्खण्डागम नामक मूल ग्रन्थ का छठा खण्ड महाबन्ध है । इसे ही महाधवल कहते हैं । यह मूल खण्ड ही इतना बड़ा (३० हजार श्लोक प्रमाण) है कि इस पर किसी भी आचार्य को टीका लिखने की जरूरत अनुभूत नहीं हुई । किसी ने लिखी तो भी वह मूल से भी छोटी ही रही (बप्पदेव ने ८००५ श्लोकों में महाबंध की टीका रची ।) यही षट्खण्डागम का अंतिम खण्ड महाबन्ध या महाधवल अनुवाद सहित सात भागों में छप कर पूर्ण हुआ है ।

इसमें सभी कर्म प्रकृतियों के बन्ध का सविस्तार व सांगोपांग वर्णन है । प्रथम पुस्तक में प्रकृति बन्ध का वर्णन है । द्वितीय तथा तृतीय पुस्तक में स्थिति बंध वर्णित है । चतुर्थ व पंचम पुस्तक में अनुभाग बन्ध तथा षष्ठ-सप्तम पुस्तक में प्रदेश बन्ध वर्णित है । केवली की वाणी द्वारा निबद्ध द्वादशांग से इसका सीधा सम्बन्ध होने से षट्खण्डागम अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थराज है, यह निर्विवाद सिद्ध है ।

कषाय पाहुड सचूर्णिसूत्र की टीका का नाम जयधवला है । धवला के बाद जयधवला वीरसेन ने लिखनी प्रारम्भ की । जिसे भगज्जिनसेनाचार्य ने पूरी की, क्योंकि वीरसेन स्वामी जयधवला का एक तिहाई भाग लिखकर ही स्वर्गवासी हो गए थे । साठ हजार श्लोक प्रमाण यह जयधवला टीका उपर्युक्त दोनों आचार्यों द्वारा कुल मिलाकर २१ वर्षों के दीर्घकाल में लिखी गई । जयधवल शक सं. ७५९ में पूर्ण हुई । यह जयधवला अनुवाद सहित १६ भागों में कुल ६४१५ पृष्ठों में मथुरा से प्रकाशित हुई है । इसमें मात्र मोह का वर्णन है । जिसमें दर्शनमोह तथा चारित्र मोह दोनों गर्भित हैं । शेष सात कर्मों की प्ररूपणा इसमें नहीं है । (जयधवल १/१६५, १३६, २३५ आदि) मोहनीय का जैसा, जितना सूक्ष्मतम, अचिन्त्य व मौलिक वर्णन इसमें है वैसा तथा उतना एवं उस विधा का वर्णन संसार के किसी ग्रन्थ में अब देखने को नहीं मिलता । विस्तृत विवेचन मूल जयधवला से ही ज्ञातव्य है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इस प्रकार धवल (१६ भाग), जयधवल (१६ भाग) तथा महाधवल (७ भाग), के कुल भाग ३९ (३९ पुस्तकें) तथा इनके कुल पृष्ठ १६, ३४१ होते हैं। इतने सहस्रों पृष्ठों प्रमाण हिन्दी अनुवाद (विशेषार्थों, प्रस्तावनाओं तथा शोधोपयोगी परिशिष्टों सहित) मुख्यतया परमश्रद्धेय गुरुवर्य पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री जी ने ही किया है। आपने इस महनीय श्रुतसेवा में जीवन के कई दशक पूरे कर दिए थे। आप वास्तव में प्रतिभा के पुंज थे, ज्ञान के कुंज थे। आप सागर के समान गम्भीर, देवजित के समान विद्वान्, शास्त्र-मर्मज्ञ, कुशल लेखक, निष्पक्ष विचारक और श्रेष्ठ करणानुयोगज्ञ थे।

## धवल आदि के अमृत बिन्दु :-

**धवल १ :-**

(१) ज्ञान के लिए जो आत्मा का व्यापार होता है वह दर्शन है (पृ. १५०) (यानी ज्ञानोत्पत्ति हेतु इसके पूर्व किया गया प्रयत्न दर्शन है)

(२) पूर्व स्वीकृत अन्य देवता के अपरित्याग के साथ-साथ अरहंत भी देव हैं, ऐसा अभिप्राय सम्यग्मिथ्यात्वी के होता है (पृ. १/१६८)

(३) उपशम सम्यकत्व भी क्षायिक वत् निर्मल है। पृ. १/१७२

(४) आगम तर्क का विषय नहीं। विश्वास व श्रद्धा का विषय है। पृ. २०७, २७३

(५) पाँचों इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम सर्व आत्मप्रदेशों में होता है। पृ. २३५

(६) बादर जीवों के शरीर से सूक्ष्म जीवों का शरीर असंख्यात गुणा भी होता है। पृ. २५३

(७) त्रस बादर ही होते हैं। पृ. २७४

(८) एकेन्द्रियों में भी गृहीत मिथ्यात्व होता है। पृ. २७५, २७७ और द्रष्टव्य ध. ८/१६१

(९) बारहवें गुणस्थान तक भी असत्य रहता है। पृ. २९१

(१०) सम्यग्दर्शन के भी असंख्यात भेद हैं। पृ. ३६८

(११) चींटी के भी अण्डे होते हैं। पर वे गर्भज नहीं होते। पृ. ३४८, महाध. ७१

(१२) एक पर्याय (व्यंजन) में एक ही भाववेद रहता है। पृ. ३४८

(१३) ज्ञान आत्मा को नहीं जानता, उसे तो दर्शन जानता है। पृ. ३८५ (और भी देखें पृ. १४८, वृ. द्रव्य सं, गाथा. ४४ पृ. २१५-२१६ (भावनगर), धवल ६/३४ जयधवल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



१/३२५, ३२४, ३०८ आदि ।) ज्ञानका विषय परद्रव्य है ।

धवल २ :-

(१) णमोकार मंत्र के कर्ता पुष्पदन्ताचार्य हैं । प्रस्ता. पृ. २

(२) सामान्य वेदक सम्यक्त्व देव व मनुष्यों के ही अपर्याप्त काल में पाया जा सकता है । पृ. ४३४ (धवल ६/४३८)

(३) लब्ध्यपर्याप्तक भी ज्ञानोपयोगी, दर्शनोपयोगी होते हैं । पृ. ५०३ आदि

(४) अयोग केवली के भी शरीर तो है । पृ. ४४९ (द्रष्टव्य षट्खण्ड. प्रस्ता. पृ. १६)

(५) तिर्यंच दर्शनमोह की क्षपणा नहीं करते । पृ. ४८४

(६) द्रव्य स्त्री वेदी (महिला) संयम को नहीं प्राप्त होते । पृ. ५१५

(७) धवला में सर्वज्ञ भाववेद से प्रयोजन है । पृ. ५१५ (द्रष्टव्य ध. १/३३५)

(८) मनुष्यों के सिवा अन्यगति वाले जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं प्राप्त करते । हां, द्वितीयोपशम सहित वहाँ जाते जरूर हैं । पृ. ५६८

(९) जल का स्वाभाविक वर्ण धवल ही है । पृ. ६११

(१०) क्षायिक सम्यक्त्वी को भी कृष्ण लेश्या सम्भव है । पृ. ७५२

(११) मनःपर्यय के साथ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सम्भव है । पृ. ७२८

धवल ३ :-

(१) संयमासंयम से प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणि निर्जरा होती है । पृ. ११९

(२) प्रतिसमय अनन्त जीव मरते हैं । पृ. ३०६ (और भी देखें धवल ७/३४६)

(३) चतुर्थ गुणस्थान में चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम भाव नहीं है ।

(४) जितने असंयत सम्यक्त्वी मिथ्यात्व में पतित होते हैं उतने ही मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में आ जाते हैं । पृ. १२०

(५) आवलि का असंख्यातवाँ भाग भी अन्तर्मुहूर्त है । पृ. ६८ (द्रष्टव्य ध. ७/२८९, २६७, २९४)

(६) अपर्याप्त काल में इन्द्रियाँ नहीं पाई जाती । पृ. ३११

(७) साधिक सूच्यंगुल x $२^{१९}$ = १ योजन होता है । पृ. ३५

(८) वर्तमान हुण्डावसर्पिणी में पद्मप्रभुतीर्थंकर का शिष्य परिवार सबसे बड़ा हुआ है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(९) अंगुल के असंख्यातवें भाग में असंख्यात कल्प काल हो जाते हैं। पृ. २७, प्रस्ता. ३२

(१०) "अनन्तान्त" शब्द से मध्यम अनन्तानंत गृहीत होता है। पृ. १९, ४०२, २४

(११) अन्तर्मुहूर्त काल में लगभग सब संसारी जीव राशि मर जाती है। ४०३

(१२) विभंगज्ञानी (मिथ्यात्वी अवधिज्ञानी) तिर्यंच असंख्यात हैं। पृ. ४३७-३८ (द्रष्टव्य धवल ९/४३५)

(१३) असंख्यात आवली का भी एक अन्तर्मुहूर्त होता है। पृ. ६९ द्रष्टव्य ध. ४/१५७

**धवल ४ :-**

(१) आकाश में भी व्यंतरों के आवास संभव हैं। पृ. २३२

(२) सभी गुणस्थानों तथा मार्गणाओं में आय के अनुसार ही व्यय होता है। पृ. १३३

(३) त्रसों में अभव्य पल्य के असंख्यातवें भाग हैं। पृ. १३२

(४) तीर्थंकर प्रकृति तथा आनुपूर्वी का उदय से पूर्व भी फल सम्भव है। पृ. १७५

(५) सभी पृथ्वियों (नरकों) में बादर जलकायिक तथा वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त होते हैं। पृ. २५२

(६) असंख्यात प्रमाण वाली (पंचेन्द्रिय आदि) राशि में उन उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण वहाँ-वहाँ पर (उन-उन विवक्षित राशियों में) अभव्य राशि होती है। पृ. ३०१

(७) लोक का आकार आयत चतुष्कोण है, न कि मृदंगाकार। पृ. ११ से २२, प्रस्ता.पृ. २० (धवल ७/३७२)

(८) स्वयंभूरमण समुद्र के पर भाग में भी योजनों प्रमाण पृथ्वी है। पृ. १५८

(९) अभी तक आप हम जीवों ने समस्त पुद्‌गलों को ग्रहण नहीं किया। पृ. ३२६

(१०) मिथ्यात्व भी व्यंजन पर्याय है। पृ. १७८, ३२७

(११) एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बाद छठे से सातवें में जाकर, सातवें व छठे में आ जाता है। पृ. ३४७

(१२) तीसरे गुणस्थान वाला जीव सीधा संयम को प्राप्त नहीं होता। पृ. ३४९

(१३) मिथ्यात्व गुणस्थान का जघन्य काल क्षुद्रभव (१/२३.०३३३ सैंकंड) से भी कुछ कम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(१४) बन्दर के असंख्यात वर्ष तक संयमासंयम सम्भव है। पृ. ४६०

(१५) सूक्ष्म एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने वाला ही ३ मोड़े लेता है। पृ. ४३४

(१६) लब्ध्यपर्याप्तकों में चक्षुदर्शनोपयोग नहीं होता। पृ. ४५४, १२७

(१७) तिर्यंचों में "तिर्यंच, देव, नारकी सम्यग्दृष्टि" नहीं उत्पन्न होते, केवल क्षायिक सम्यक्त्वी मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, अन्य कोई सम्यक्त्वी नहीं। पृ. २०९

(१८) वायुकायिकों को छोड़कर अन्य बादर जीव पृथ्वी के सहारे से ही रहते हैं। पृ. १६४

धवल ५ :-

(१) अनादिसान्त जो है वह नियम से अनन्त है। पृ. २५

(२) सम्मूर्च्छनों को वेदक सम्यक्त्व ही होता है, उपशम सम्यक्त्व नहीं। पृ. ७३

(३) ग्यारहवें गुणस्थान को जीव अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः प्राप्त कर सकता है॥ पृ. ७५

(४) क्षपकों के विवक्षित गुणस्थान-काल से उपशमक का वही विवक्षित गुणस्थानकाल आधा होता है। पृ. १२१-२२, १५९

(५) केवलज्ञान क्षायिक है, पारिणामिक भाव नहीं। पृ. १९१

(६) एक ही उपशम सम्यक्त्व से दो बार (दूसरी बार) उपशम श्रेणि प्राप्त नहीं की जा सकती। पूर्व का उपशम सम्यक्त्व वेदक में बदलकर पुनः उपशम सम्यक्त्व होगा तो पुनः उपशमश्रेणि चढ़ना सम्भव है। पृ. १७०

(७) योग पारिणामिक भाव है (पृ. २२५) योग औदयिक भाव है पृ. (२२६) योग क्षायोपशामिक भाव है (धवल ७/७५)

(८) ग्रैवेयकों में मिथ्यात्वी जीव वहाँ के सम्यक्त्वी जीवों के भी संख्यातवें भाग है। पृ. २८३

(९) सासादन गुणस्थान को उपशम सम्यक्त्वी ही प्राप्त होते हैं। पृ. २५०

(१०) तीनों लोकों में कभी एक ही उपशम सम्यक्त्वी हो, यह सम्भव है। पृ. २५७ तथा ध. ९/२७७

धवल ६ :-

(१) वेदक सम्यक्त्वी के श्रद्धा की हानि पाई जाती है। पृ. ४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(२) निंबू में रस नामकर्म के उदय से रस (खट्टा) उत्पन्न होता है । पृ. ५५

(३) तैजस कार्मण शरीर के अंगोपांग नहीं होते । पृ. ७३ (क्योंकि इनके हाथ, पांव, गला आदि का अभाव है)

(४) एकेन्द्रियों के हाथ, पांव, नाक, गला आदि नहीं होते, अत: उनके अंगोपांग नहीं होते । पृ. ११२

(५) स्वभाव अन्य के प्रश्न योग्य नहीं हुआ करते हैं । पृ. १४८

(६) ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक एक (समान) ही यथाख्यात संयम होता है । (पृ. २८८, धवल ७/५६७, ज.ध. १३/१८७)

(७) ग्रैवेयक वासी देव वीतराग होते हैं (अतिमन्द कषायी) पृ. ४३६

(८) जिनबिम्बदर्शन से निधत्त व निकाचित रूप मिथ्यात्व का भी क्षय हो जाता है । पृ. ४२७-४२८

(९) सभी गतियों में सम्यग्मिथ्यात्व के साथ न प्रवेश होता है, न ही मरण ।

(१०) नारकी (मर कर) भोग भूमि में नहीं जाते, क्योंकि उनके दान व दान का अनुमोदन नहीं रहता है । पृ. ४४९

(११) सासादन एकेन्द्रियों में एक मत से उत्पन्न होता है, अन्य मत से नहीं । (मत संग्रह यहाँ लिखा है - पृ. ४६०)

(१२) भावसंयम बिना भी द्रव्यसंयम हो जाता है । पृ. ४६५

(१३) जिस गति में, जिस गुणस्थान में आयु कर्म का बंध नहीं होता, उस गुणस्थान सहित निश्चयत: उस गति से मरण भी नहीं हो सकता, ऐसा कषायउपशामकों को छोड़ कर अन्य सब जीवों के लिए नियम है । पृ. ४६३-६४ तथा धवल ८/१४५

(१३) सासादन मिश्र, वेदक सम्यक्त्वी प्रथमोपशम सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त कर सकते । पृ. २०६

**धवल ७ :-**

(१) योग क्षायोपशमिक एवं औदयिक भाव है । पृ. ७५ (और भी देखें धवल ७/३१६)

(२) सभी औदयिक भाव (गति, जाति आदि) बन्ध के कारण नहीं होते । पृ. १०

(३) कषायों में ही प्रमाद व असंयम गर्भित हैं । पृ. १२, १३

(४) उपघात का सदा ही परघात के साथ उदय होता है । पृ. ५७-५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(५) प्रत्येक जीव-द्रव्य में ज्ञान है। पृ. ६९ (ज.ध १/४५)

(६) एक कार्य सर्वत्र एक ही कारण से नहीं उत्पन्न होता। पृ. ६९

(७) अघाती कर्मों का क्षयोपशम नहीं होता। पृ. ७४

(८) गमन को योग नहीं कहा जा सकता। पृ. ७७

(९) स्पर्शनेन्द्रियावरण, वीर्यान्तराय, मतिश्रुतज्ञानावरण इनके सर्वघाती स्पर्धकों का उदय का सर्व काल में अभाव है। पृ. ८८

(१०) ज्ञानावरण कर्म का उपशम नहीं होता। पृ. ८९

(११) दर्शन का व्यापार (= विषय) आत्मा में होता है, बाह्य पदार्थों में नहीं। पृ. ९९

(१२) मिथ्यात्व भी लेश्या है। पृ. १०५

(१३) एक तिर्यंच अन्य व्रती तिर्यंच को शुष्क पत्ते (भोजन हेतु) दान में देता है। पृष्ठ १२३

(१४) षट्खण्डागम सूत्र भगवान् के मुख से निकले हैं। पृ. १४७ (द्रष्टव्य ३/२८२)

(१५) विभंग ज्ञान छह पर्याप्तियों से पर्याप्त होने पर ही होगा। पृ. १६४

(१६) चक्षुदर्शनोपयोग का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। पृ. १७३

(१७) अभव्यपना, यह जीव की अविनाशी व्यंजन पर्याय है। पृ. १७८

(१८) मात्र अन्तर्मुहूर्त आयुवाले संज्ञी सम्मूर्च्छन तिर्यंच के पंचमगुणस्थान की प्राप्ति तथा मृत्यु: फिर स्वर्ग गमन (पृ. १९५)

(१९) पर्याप्तकों की आयु कभी भी क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण नहीं होती। (पृ. २१४)

(२०) क्षुद्रभव आयुवाले नियम से अपर्याप्त व नपुंसक वेदी ही होते हैं। पृ. २१४

(२१) द्वितीयोपशमसम्यक्त्व का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पृ. २३१

(२२) जगत् में मनुष्य अपर्याप्त कदाचित् नहीं भी होते। पृ. २३८, ४८१ आदि

(२३) अपर्याप्तों में चक्षुदर्शनोपयोग तथा द्रव्यचक्षु: दर्शन नहीं होते। पृ. २९१

(२४) नारकियों में व्रत की गन्ध भी नहीं है। पृ. २९९

(२५) बिना महाव्रतों के तैजससमुद्घात नहीं होता। पृ. २९९

(२६) अपर्याप्तावस्था में विभंगज्ञान व मनःपर्यय नहीं होते। पृ. ३५२-५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(२७) अभव्यजीव लोक में सर्वत्र हैं। पृ. ३६०

(२८) वैरी देवों के प्रयोग से तिर्यंच असंख्यात समुद्रों में भी मिलते हैं। पृ. ३७५

(२९) पापी जीव बहुत होते हैं। पृ. ५२७

(३०) मनुष्य कम हैं। इनसे नारकी असंख्यगुणे। नारकी से देव असंख्यगुणे। देवों से सिद्ध अनन्त गुणे। सिद्ध से तिर्यंच अनन्तगुणे हैं। पृ. ५२०-२१

(३१) वैरी देवों के प्रयोग से भी ढाई द्वीप से बाहर मनुष्य नहीं जाते। पृ. ३८०

(३२) बारहवें स्वर्ग का देव सोलहवें स्वर्ग में जाकर मर सकता है। पृ. ४५७

(३३) आनतादि स्वर्ग के देव मेरु की जड़ तक जा सकते हैं, इससे नीचे नहीं। (अत: सीता का जीव किसी भी नरक में नहीं गया) पृ. ३९१

(३४) अघाती कर्म जीव गुण को नहीं घातते। पृ. ६२

(३५) मनुष्य ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक जा सकता है। (देवों की सहायता से) पृ. ३८०

धवल ८ :-

(१) सम्यग्दृष्टि मनुष्य तथा तिर्यंच मनुष्यायु नहीं बाँधते। पृ. ६३

(२) अरहन्त का अर्थ सिद्ध भी है। पृ. ८९

(३) सम्यक्त्व के होने पर शेष १५ कारणों में से १, २ आदि कारणों से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है। पृ. ९१

(४) नरक में भी साता का उदय (कदाचित्) है। पृ. ९४

(५) क्षायिक समकिती नारकी के भी नीचगोत्र ही होता है। पृ. ९५

(६) उपशम श्रेणी से उतर कर मर कर जीव यथाकाल नरक में भी जा सकता है। पृ. ९७

(७) प्रथम नरक में तीर्थंकर प्रकृति के सत्व वाले मिथ्यात्वी नारकी नहीं हैं। पृ. १०४

(८) हमारे मनुष्य गति का उदय निरन्तर है तथा उदीरणा भी। पृ. १३२ तथा (जयध. १२/२२०)

धवल ९ :-

(१) विग्रहगति में भी तैजसवर्गणा का ग्रहण होता है। पृ. ४०४, प्रस्ता.पृ. ४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(२) विभंगज्ञानी (मिथ्यात्वी अवधिज्ञानी) तिर्यंच व मनुष्य असंख्यात जगच्छ्रेणि प्रमाण हैं। पृ. ४३५

(३) एक नारकी मर कर अन्तर्मुहूर्त बाद पुन: नारकी बन सकता है। पृ. ३०४

(४) एक भूत मर कर अन्तर्मुहूर्त के लिए मनुष्य बन कर, मर कर पुन: भूत बन सकता है। (पृ. ३०५, १९० और भी देखें धवल ७/१९०-९१)

(५) सातवें नरक का नारकी, अन्तर्मुहूर्त के लिए यानी अन्तर्मुहूर्त आयु वाला तिर्यंच बन कर पुन: मर कर उसी सातवें नरक में चला जावे, यह सम्भव है। पृ. ३०४, ३४०

(६) नमस्कार सूत्र मंगल सूत्र गौतम स्वामी-कृत हैं। पृ. १२

(७) अवधिज्ञान अर्थ पर्याय कोभी जानता है। पृ. २७

(८) धारणा ज्ञान असंख्यात वर्षों तक (भी) रहता है। पृ. ५४

(९) गुरु-उपदेश बिना भी ज्ञान हो सकता है। पृ. ८२, १५५

(१०) मुनि का भी अकालमरण सम्भव है। पृ. ८९

(११) स्वर्ग का सुख भी संसार का कारण है, राग को छोड़ कर वहाँ सुख है ही नहीं। पृ. १०६

(१२) क्षायिक भाव को भी देशावधि विषय करता है। पृ. ११३

(१३) इन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा नहीं पकडा जाता : इन्द्रियाँ बाहरी पदार्थ को ही जानती हैं। पृ. ११४

(१४) षट्खण्डागम का अध्ययन मोक्षरूप कार्य करने में समर्थ है। पृ. १३३

(१५) उपदेश के बिना द्वादशांग श्रुत का ज्ञान सम्भव है। पृ. १५५

(१६) गणधर को भी संशय होता है। पृ. २००

(१७) केवली भगवान केवली-समुद्घात को अधूरा नहीं छोड़ते। पृ. ३९४

धवल १० :-

(१) परभवसम्बन्धी आयुबन्ध के बाद अकालमरण (वर्तमान आयु का) नहीं होता। पृ. २३७, ३३२, २५६ आदि (धवल ६/१६८, २५६)

(२) जीव के गमन को योग नहीं कह सकते। सिद्धों के ऊर्ध्वगमन के समय योग नहीं होता। पृ. ४३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(३) केवलदर्शन आत्मा को जानता है : केवल ज्ञान नहीं ।

(४) योग औदयिक भाव है तथा क्षायोपशमिक भाव है । पृ. ४३६

(५) सूक्ष्मनिगोद से सीधा मनुष्यों में उत्पन्न होने वाला संयमासंयम तक की प्राप्ति कर सकता है, इससे अधिक नहीं । पृ. २७६ (जयध. ६ पृ. १३१)

(६) अपकृष्ट द्रव्य भी गोपुच्छाकार से दिया जाता है । पृ. १९४

(७) आयु का अवलंबनाकरण पृ. ३३०

(८) एक जीव एक भव में अधिक से अधिक ८ बार आयु बन्ध कर सकता है । पृ. २२९, २३४

(९) एकेन्द्रियों में स्थितिकाण्डक घात होते हैं । पृ. २९१, ३१८

(१०) जीव असंख्यात बार सम्यक्त्व ग्रहण करता तथा छोड़ता है । पृ. २९४

(११) जिन पूजा, वन्दना और नमस्कार से भी बहुत कर्मप्रदेशों की निर्जरा पाई जाती है । पृ. २८९

(१२) १० हजार वर्ष की आयु वाले देवों में संचित हुए द्रव्य से संयमगुणश्रेणि द्वारा एक समय में निर्जरा को प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है । पृ. २८५-८६

धवल ११ :-

(१) दो समुद्घात एक साथ हो सकते हैं । पृ. २०

(२) धवला में भाववेद प्रकृत है । पृ. ११४

(३) अव्रती सम्यक्त्वी के सर्वोत्कृष्ट संक्लेश की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यात्वी का जघन्य संक्लेश भी अनन्तगुणा होता है । पृ. २३६

(४) छठे गुणस्थान से पाँचवें में अनन्तगुणी कषाय तथा पाँचवें से चौथे में अनन्तगुणी कषाय होती है । पृ. २३५

(५) उत्पत्ति के समय को स्थिति नहीं कहते हैं । द्वितीयादि समयों में रहना स्थिति है । पृ. २२९

(६) स्थिति बन्ध का कारण कषाय ही नहीं है, किन्तु निज-निज प्रकृति का उदय भी कारण है । पृ. ३१०,३४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



धवल पु. १२ :-

(१) अष्टमध्य प्रदेश में भी कर्मबन्ध होता है। पृ. ३६७

(२) मिथ्यात्वी के उत्कृष्ट संक्लेश के समय शुभ प्रकृति का बन्ध नहीं होता, अशुभ ही बंधती है। पृ. १९

(३) कर्म में अज्ञान उत्पन्न करने की शक्ति है। पृ. २, ३

(४) श्रोताओं के मूर्ख होने पर वक्ता का वक्तापन भी व्यर्थ है। पृ. ४१४

(५) श्रुतज्ञान तथा मनःपर्यय का दर्शन नहीं होता, क्योंकि ये ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होते हैं। अथवा, श्रुत तथा मनःपर्यय ज्ञान के भी दर्शन हैं, क्योंकि इनके द्वारा अवगत अर्थ का संवदेन वहाँ भी पाया जाता है। ऐसा स्वीकार करने पर पूर्व कथन के साथ विरोध भी नहीं होता, क्योंकि उनके कारण भूत दर्शन का पूर्व में प्रतिषेध किया है। पृ. ५०२

(६) शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात विशुद्धि, केवलि समुद्घात तथा योग-निरोध से भी नहीं होता। पृ. १८, ३५

(७) आयु के स्थिति व अनुभाग ये दोनों मात्र अपवर्तना से नष्ट होते हैं, काण्डकघात से नहीं। पृ. २१

(८) द्वीपायन मुनि ने पहले तो अनुत्तर विमानों में आयु बाँधी थी। पृ. २१

(९) संक्लेश से शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात होता है तथा अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग में वृद्धि भी। पृ. ३५, ७२

(१०) साता वेदनीय सब शुभ कर्मों में से शुभतम है। वह अतिशय सुख को उत्पन्न करता है। पृ. ४७, ४६

(११) उत्कृष्टतः छह मास तक शोक रह सकता है। (जैसे बलदेव को था) पृ. ५७

(१२) योगवृद्धि से बद्ध कर्मानुभाग में वृद्धि नहीं होती। पृ. ११५

(१३) जीव व कर्म दोनों परतंत्र हैं। पृ. ३६५

(१४) क्षपकश्रेणि में आयु की गुणश्रेणि का अभाव है। पृ. ४३१

धवल पु. १३ :-

(१) श्रेणि से उतर कर मुनिराज देवों में उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त बाद मिथ्यादृष्टि बन गए। पृ. १४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(२) पर्यायों का समूह द्रव्य है। अतीत व अनागत पर्यायों का जीव में अपने स्वरूप से पाया जाना सम्भव है। पृ. २४०

(३) करुणा जीव का स्वभाव है। पृ. ३६२

(४) ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थान में प्रत्येक में प्रथम व द्वितीय दोनों शुक्ल ध्यान सम्भव हैं। पृष्ठ ८१

(५) सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल साधिक ९९ सागर है। (भिन्न मत) पृ. ११०

(६) नरक में छह पर्याप्ति से पूर्व सम्यक्त्व नहीं हो सकता। १११

(७) परमाणु भी सर्वथा निरंश नहीं है। पृ. १९, २४

(८) धवल अध्यात्म ग्रन्थ है। पृ. ३६-३७ (और भी देखें धवल १५/३ तथा ज.ध. ६/१५३)

(९) सिद्धान्त ग्रन्थों में भाव मार्गणाओं की ही प्ररूपणा की गई है। पृ. ३७

(१०) केवली के साता का अनुभाग बन्ध तो होता है, पर अत्यल्प। अतः उसे गिनती में नहीं लिया। पृ. ४९

(११) शरीर के शोषण को उपवास नहीं कहते। पृ. ५५

(१२) धर्मध्यान दशम गुणस्थान तक होता है। पृ. ७४

(१३) पहले पहल अन्तिम पूर्व का ज्ञान भी किसी जीव को हो सकता है, ऐसा नहीं कि उत्पाद (प्रथम) पूर्व ही का सर्वप्रथम ज्ञान हो। पृ. २७३

(१४) उपदेश के बिना भी द्वादशांग का ज्ञान सम्भव है। पृ. २३९

(१५) जीव के सब गुणों के अविभाग प्रतिच्छेद संख्या में समान नहीं होते। पृ. २६३ (और भी देखें गो.जी. भाग-१ पृ. २१८ ज्ञानपीठ तथा त्रि.सा. ७१)

**धवल १४ :-**

(१) सूक्ष्मनिगोदों में भी अकालमरण (कदलीघात) होता है। पृ. ३५६

(२) देवकुरू उत्तरकुरू में आयु ३ पल्य की ही होती है। दूसरे मत के अनुसार समयाधिक २ पल्य प्रमाण जघन्य आयु से लेकर ३ पल्य तक सभी आयु-विकल्प वहाँ होते हैं। पृ. ३९८-९९

(३) एक निगोद शरीर में जन्मे हुए सब जीवों की आयु समान ही हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। पृ. ४८७, २२७, २२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(४) एक निगोद कभी अकेला नहीं रहता। (पृ. ८ प्रस्ता.)

(५) सूक्ष्मनिगोद जल, स्थल तथा आकाश में सर्वत्र हैं। पृ. ११३, १४९ (तथा मु.ब.पु. ७:५)

(६) पंचेन्द्रिय की अपेक्षा एकेन्द्रियों के कषाय अनन्तगुणीहीन तथा योग असंख्यातगुणा-हीन होता है। पृ. ४२७

(७) एक प्रमाण दूसरे प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि यदि ऐसा न माना जाए तो अनवस्था दोष का प्रसंग आवेगा। पृ. ३५०, ५०७ (आदि)

(८) शुद्ध परमाणु सदाकाल अनन्त रहते हैं। (१४९, ५४४, १५५, १७९, १८४, १८५, २१२, २२२ आदि)

(९) सूक्ष्म, पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु : कायिक जीव सर्वलोक में व्याप्त हैं।

(१०) कभी भी ऐसा काल तो आता ही नहीं है कि जब कोई एक भी शुद्ध परमाणु द्रव्य इस ब्रह्माण्ड में न हो। (यानी शुद्ध परमाणु द्रव्य का कभी विरह नहीं होता) पृ. १५१

(११) मनःपर्ययज्ञानी भी विक्रिया करते हैं। पृ. ३१३

(१२) तैजसशरीर खाए गए अन्नपान को पचाता है तथा रोनक का कारण भी होता है। पृ. ३२८, (और भी देखें राज वा.पृ. ३४४ ज्ञानपीठ)

धवल १५ :-

(१) भोगभूमि में भी कदलीघात सम्भव है। (पृ. ७८ परिशिष्ट सत्कर्मपंजिका) यह एक आचार्य का कत है। (मूल पृ. २९९)

(२) नरक आदि गतियों में तत् तत् आयुकर्म की उदीरणा निरन्तर होती है। पृ. ६३

(३) नरक में निरन्तर यावज्जीवन असाता की उदय उदीरणा भी सम्भव है।

(४) भोगभूमि के स्त्री के भी वज्रवृषभनाराचसंहनन ही होगा। पृ. ६५

(५) प्रशस्त कर्मों की भी गुणश्रेणिनिर्जरा होती है। पृ. ३००-३०१ : ३०९ (तथा जयधवल १६/१४९, १४/१७४) आदि)

(६) सम्यक्त्व प्रकृति सम्यक्त्व का एक देश घात करती है। पृ. ११ (द्रष्टव्य ज.ध. ५/१३०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(७) सर्वार्थसिद्धि के देव भी छह मास से ज्यादा काल तक सुखी नहीं रह सकते । पृ. ६२, ६८

(८) सातवें नरक का नारकी यावज्जीवन असाता का उदय वाला रह सकता है । पृ. ६२

(९) नरक में कभी सभी नारकी असाता के उदय से दुःखी हों तथा एक ही नारकी सुखी (साता का उदय वाला) हो, यह संभव है । पृ. ७२

(१०) संयमासंयम को पालनेवाले तिर्यंचों में उच्चगोत्र पाया जाता है । पृ. १५२

(११) कोई भी प्राणी ब्रह्माण्ड में अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल तक सो नहीं सकता तथा (पृ. ६२) तथा अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल तक जाग भी नहीं सकता पृ. ६८

धवल पु. १६ :-

(१) तीर्थंकर प्रकृति के सत्व वाले नारकी असंख्यात हैं । पृ. ३८५, ४०१ (महाधवल १/३१५)

(२) पुण्य के बन्ध के समय सत्ता के कुछ पाप का भी पुण्य रूप संक्रमण होता है । पाप के बंध के समय सत्ता के कुछ पुण्य का भी पापरूप परिणमन हो जाता है । पृ. ३४०

(३) केवलज्ञानावरण का जघन्य अनुभाग भी सर्वघाती होता है । सारतः आंशिक केवलज्ञान कभी भी प्रकट नहीं होता, पूर्ण ही प्रकट होता है । पृ. ५३८-३९

(४) सम्यग्दृष्टि प्रशस्त कर्मों का अनुभाग नहीं घातता । पृ. ३८० (द्रष्टव्य ध. १२/१८)

(५) सकल प्रशस्त कर्मों का अनुभाग काण्डक घात मिथ्यात्वी ही करता है । पृ. ४०२

(६) एक ही भव में दो बार उपशम श्रेणि चढ़ना शक्य है । पृ. ४६५

महाधवल पु. १ :-

(१) धवल महाधवल, जयधवल तथा विजयधवल ग्रन्थ हैं । प्रस्ता. पृ. २

(२) ज्ञानचेतना में ज्ञातृत्व भाव, कर्म चेतना में कर्तृत्व भाव तथा कर्मफल चेतना में भोक्तृत्व भाव है । (प्रस्ताव.)

(३) सम्यक्त्वी के जघन्य अवस्था में ज्ञान चेतना के सिवाय कर्म तथा कर्मफल चेतनाएँ भी पाई जाती हैं । इसी से वह किन्हीं प्रकृतियों का अबन्धक तथा किन्हीं का बंधक होता है । प्रस्ता.पृ. ८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(४) जीवन भर तक यानी असंख्यात करोड़ वर्षों तक सम्यक्त्वी रहा ऐसा सप्तम पृथ्वी का नारकी भी अंतिम अन्तर्मुहूर्त में नियम से मिथ्यात्वी हो जाता है ।

(५) साता का बन्ध होने पर असाता का बन्ध नहीं होता ।

(६) आताप प्रकृति का उदय सूर्य विमान में स्थित बादर पृथ्वी कायिक के ही पाया जाता है ।

(७) गतिबंध तो सदा होता है, पर आयु बंध सदा नहीं होता ।

(८) आनतादि स्वर्गों में एक मनुष्यायु का ही बंध होता है ।

महाधवल पु. २ :-

(१) मनुष्यों में असंज्ञी भेद नहीं होता ।

(२) असंज्ञी मात्र तिर्यंच ही होते हैं ।

(३) आयुकर्म में स्थिति के अनुपात से आबाध नहीं होती ।

(४) वैक्रियिक मिश्र काय योग, कार्मण काययोग, अनाहारक, उपशम सम्यक्त्व, मारणान्तिक समुद्धात तथा सम्यग्मिथ्यात्व में आयुबंध नहीं होता । पृ. २८२, ३०३ (तथा पु. ४ म.ब.)

(५) औदारिक मिश्र काययोग में आयुबंध मात्र लब्ध्यपर्याप्तकों के ही होता है । प. ५१

(६) अन्य किसी भी मिथ्यादृष्टि के ३१ सागर प्रमाण देवायु का बंध नहीं होता । परन्तु परमविशुद्धियुक्त निर्ग्रन्थ द्रव्यलिंगी साधु के ही होता है । पृ. २७५

(७) असंज्ञी के भी तीनों वेदों का उदय होता है (असंज्ञी पंचेन्द्रिय के) पृ. ३०४

(८) लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य के एकमात्र काय योग होता है । पृ.

महाबन्ध पु. ४ :-

(१) जीव में विद्यमान कषाय परिणाम स्पर्श गुण का ही कार्य करता है, अतः स्पर्श गुण के अभाव में भी जीव से पुद्गल का सम्बन्ध हो जाता है । (स्निग्ध, रूक्ष)

(२) घाती कर्मों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध साकारोपयोग के बिना नहीं होता ।

(३) ऐशान (दूसरे) स्वर्ग तक एकेन्द्रिय आदि का बंध होता है ।

(४) सब अपर्याप्तों की काय ( = भवसमूह) स्थिति अन्तर्मुहूर्त है । द्रष्टव्य पु. ६ व ७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**महाबन्ध पु. ५ :-**

(१) सातावेदनीय शुभ कर्म है, अतः इसके उत्कृष्ट स्थिति बन्ध में कम अनुभागबंध तथा इस क्रम से चलते-चलते जघन्य स्थिति बंध के समय उत्कृष्ट अनुभाग बंध होता है।

(२) एक पर्याय में जीव अधिक से अधिक दो बार उपशम श्रेणि चढ़ सकता है।

(३) साधारणतया यह नियम है कि शुभ प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थिति बन्ध के समय अनुभाग बन्ध उत्कृष्ट नहीं होता, परन्तु जघन्य स्थिति बन्ध के समय उत्कृष्ट अनुभाग बंध होता है। जैसे सातावेदनीय। अशुभ प्रकृतियों का जहाँ-जहाँ उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है वहाँ-वहाँ उत्कृष्टि अनुभाग बन्ध भी होता है तथा जघन्य स्थितिबंध के समय जघन्य अनुभाग बन्ध ही होता है जैसे ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय का दसवें गुणस्थान के चरम में होने वाले इनके बंध।

**महाधवल पु. ६ :-**

(१) एक हाथ से पानी से भरी बाल्टी उठाने पर उस हाथ के आत्मप्रदेशों में अधिक खिंचाव (= ज्यादा योग) होता है। उसी समय शेष शरीर-अवयवों में उतना खिंचाव नहीं होने से शेष आत्म-प्रदेशों में हीन योग जानना चाहिए। इस प्रकार "योग गुण आत्मा में किसी प्रदेश में जघन्य होता है तो किसी में उत्कृष्ट।"

(२) सब प्रकृतियों का बंध औदयिक भाव से होता है।

(३) साधारणतया यह नियम है कि जो जिस जाति में उत्पन्न होता है, यदि वह सम्यक्त्वी नहीं है, तो उसके मरण के अन्तर्मुहूर्त पूर्व से उसी जाति संबंधी प्रकृतियों का बंध होने लगता है। पृ. १४८

**महाधवल पु. ७ :-**

(१) भोग भूमि में नपुंसक वेद आदि का बंध अपर्याप्तावस्था में होता है।

(२) तीर्थंकर सत्वी मिथ्यात्वी मनुष्य दूसरे, तीसरे नरकों में ही जाते हैं, प्रथम में नहीं। पृ. १६८, १८२ आदि (और भी देखें महाध. ५/२८७ तथा धवल ८/१०४)

(३) नरक, मनुष्य तथा देव गति में यदि कोई जीव उत्पन्न न हो तो कम से कम १ समय तक और अधिक से अधिक २४ मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होता।

(४) उपशम सम्यक्त्व के काल में संयमासंयम तथा संयम की दो बार प्राप्ति तथा च्युति सम्भव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(५) एकेन्द्रिय जीव सातावेदनीय भी बांधते हैं, जब विशुद्ध हों।

**जयधवल पु. १ :-**

(१) अपर्याप्तावस्था में भी उपयोग रूप ज्ञान-दर्शन हो सकता है। पृ. ५१

(२) वर्तमान आगम प्रमाण है। पृ. ६४ पृ. ८२

(३) स्यात्-शब्द का अर्थ "कहीं पर", भी होता है। पृ. ३३८, २५३, ३४५

(४) चरमशरीरी का अकाल मरण नहीं होता। पृ. ३६१, ३२९

(५) जीव कथंचित् मूर्त है। पृ. २८८, २४४ तथा पृ. १३३ १०१ पृ. २८४, २३७

(६) यह नय सच्चा है, यह नय झूठा है, ऐसा भेदभाव अनेकान्त के ज्ञाता पुरुष नहीं करते। पृ. २५७ (नया संस्करण पृ. २३३)

(७) क्रोध क्षमागुण का नाश करके उत्पन्न होता है। पृ. २८८, २४४

(८) रत्नत्रय के साधन विषयक लोभ से स्वर्गमोक्ष की प्राप्ति होती है। पृ. ३६९-७०

(९) कारण के बिना भी कार्य उत्पन्न होता है। पृ. २९१

(१०) व्यवहार नय असत्य नहीं है। पृ. ७

(११) दिव्यध्वनि का विस्तृत वर्णन। पृ. १५ से ११८

(१२) यद्यपि सर्वघाती केवलज्ञानावरण केवलज्ञान या ज्ञान सामान्य का पूरी तरह आवरण करता है। फिरभी उससे रूपी द्रव्य को जानने वाली कुछ ज्ञान किरणें निकलती हैं। इन्हीं ज्ञान किरणों के ऊपर शेष मति ज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण आदि चार आवरण कार्य करते हैं। फिर इन आवरणों के क्षयोपशम के अनुसार हीनाधिक ज्ञान-ज्योति छद्मस्थों के प्रकट होती रहती है। - इस तरह ज्ञानसामान्य (केवलज्ञान) पर दुहरे आवरण पड़े हैं। यह भगवद्वीरसेनीय मत है। जयध. १/४४, धवल १३/२१४, जयध. १/२१ विशेषार्थ। जयध. १ प्रस्ता.पृ. ८६ आदि।

(१३) औदयिक भाव से कर्मबन्ध होता है, औपशमिक क्षायिक मिश्र से मोक्ष। परिणामिक भाव बन्ध-मोक्ष का कारण नहीं।

(१४) विपुलमति का ४५ लाख योजन जो क्षेत्र है, वह मानुषोत्तर के बाहर भी हो सकता है। पृ. १९, (मूल धवल ९/६८ में यह कथन है)

(१५) कषायपाहुड का कथन तो स्वसमय ही है। पृ. १३६

(१६) आयु का उत्कर्षण भी बन्ध के समय ही संभव है। पृ. १३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(१७) जितने वचनमार्ग हैं, उतने ही नयवाद हैं। जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय (परमत = विभिन्न मत) है।

(१८) अचक्षुदर्शन छद्‌मस्थों के सदा पाया जाता है।

(१९) हमारे दर्शनोपयोग का जघन्य काल संख्यात आवली है, एक समय नहीं। पृ. ३०१। इसी तरह विभिन्न ज्ञानों, दर्शनों, लेश्याओं, ध्यानों व कषायों के जघन्य व उत्कृष्ट काल का निरूपण पृ. ३०१ से ३३० पर द्रष्टव्य है।

जयधवल पु. २ :-

(१) क्षायिक सम्यक्त्वी किसी भी भोगभूमि में उत्पन्न हो सकता है। पृ. २६१

(२) छः मास ८ समय में निरंतर ८ सिद्ध समय होने का नियम नहीं है। पृ. ३६०-६१

(३) प्रथम नरक में क्षायिक सम्यक्त्वी की जघन्य आयु ८४ हजार वर्ष उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवें भाग कम १ सागर होती है। पृ. २५९

(४) असंज्ञी पंचेन्द्रिय के तीनों वेद होते हैं। पृ. २९ (और भी देखें धवल १/३४६ सूत्र १०७, धवल ४/३६८, तत्त्वार्थवृत्तिपद १/७/३९३ स.सि.ध. ७/५५५ गो.जी. २८०-८१ महाधवल २/३०४/ आदि)

(५) उपशम सम्यक्त्वाभिमुख अंतिम समयवर्ती मिथ्यात्वी के २६, २७, २८ में से किसी एक प्रकृति समूह प्रमाण मोहनीय का सत्वस्थान संभव है। पृ. २५३-२५६

(६) दुरानुदूर भव्य नित्य निगोद-भाव को प्राप्त हैं। पृ. ३८९ : २४, ९०, ४०

(७) प्रथम नरक में असंख्यात क्षायिक सम्यक्त्वी (यानी २१ के स्थान वाले) हैं। यही संख्या पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में तथा प्रत्येक ग्रेवैयक में क्षायिक सम्यक्त्वी जीवों की है। पृ. ३१९

जयधवल पु. ३ :-

(१) अनन्तानुबंधी की क्षपणा। विसंयोजना का विस्तृत निरूपण पृ. २४६-४८ तथा जयध. ५/२०७

(२) प्रतिपक्षनय का निराकरण करने वाला नय समीचीन नय नहीं होता। पृ. २९२

(३) संज्ञी पर्याप्त के मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिबंध भी अन्तः कोटा-कोटी सागर होता है। पृ. ४३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(४) संक्रमावली तथा बन्धावली सकल करणों के अयोग्य होती है। पृ. २४७

(५) प्रथम समयवर्ती सम्यक्त्वी के मिथ्यात्व के ३ टुकड़े हो जाते हैं। पृ. १९५-९६

(६) मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध चारों गति में होता है। पृ. ९, १०, ११, १९१

(७) सम्यक्त्वी के भी सम्यक्त्व प्रकृति की सत्ता कुछ कम ७० कोड़ा कोड़ी सागर हो सकती है। पृ. १०

जयधवल. पु. ४ :-

(१) विसंयोजना वाला सासादन में भी जाता है। पृ. ११, २४ तथा जयध. ८/११६

(२) छः मास ८ समय में ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं और उतने ही नित्य निगोद से निकलते हैं। पृ. १००

(३) जितने मिथ्यात्वी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं उतने ही सम्यक्त्वी सम्यक्त्व खोकर मिथ्यात्वी बन जाते हैं। पृ. १००

(४) ऐसे मिथ्यात्वी, जो पहले सम्यक्त्वी थे, अनन्त हैं। पृ. ९९-१००

(५) इतर-निगोद नित्यनिगोदों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। पृ. १००-१०१

जयधवल पु. ५ :-

(१) सम्यक्त्व प्रकृति सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व की स्थिरता तथा निःकाक्षिता को घातती है। अर्थात् एकदेश सम्यक्त्व घातती है। पृ. १३० (और भी देखें जय. १३/५८)

(२) सम्यक्त्व गुण सावयव है। पृ. १३९

(३) देशसंयमी व संयमी के संज्वलन कषाय तथा नोकषाय का देशघाती उदय ही रहता है। पृ. १४८ (और भी देखें ध. ५/२०२ तथा जयध. ९९/३९)

(४) अन्तरंग कारण को स्वभाव कहते हैं। पृ. ३८७

(५) विशुद्धि के वश से सम्यक्त्व घाता जाकर अनन्तगुणीहीनऐसी सम्यक्त्वप्रकृतिपने को प्राप्त होता है। पृ. २६१

जयधवल पु. ५ तथा ६ :-

(१) ८ वर्ष आयु से पूर्व द्रव्यलिंगी मुनि भी नहीं होता। पृ. १२

(२) अनन्तर ही (तत्काल ही) कहे हुए अर्थ को स्मरण रखने में जो असमर्थ है उसको अध्यात्मशास्त्र सुनने का अधिकार नहीं है। पृ. १५३

(३) योग तथा कषाय के सिवा अन्य कारणों से भी कर्म परमाणुओं की हानि वृद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



देखी जाती है । पृ. २१७

(४) सम्यक्त्व तथा संयम आदि के बिना, एकेन्द्रियों में क्षपित क्रिया द्वारा उत्कृष्टरूप से कर्मों की निर्जरा होती है । पृ. २४९

(५) अतिथिलाभ सम्भव न होने पर भी यदि मनुष्य भोजन के समय सदा अतिथियों की प्रतीक्षा करके ही भोजन करता है तो भी वह दाता है । पृ. २८७

(६) बन्ध के अभाव में संक्रम तथा उत्कर्षण नहीं होते । पृ. ९५

**जयधवल पु. ७ :-**

(१) उदयावली सकल करणों के अयोग्य होती है । पृ. २४१

(२) गुरु का उपदेश मृषा (झूठ) नहीं हो सकता । पृ. ९४

(३) बाह्य कारणों की अपेक्षा आभ्यन्तर कारण बलिष्ठ होता है । पृ. ९६

(४) उत्कर्षण के विशिष्ट नियम । पृ. २४४ आदि

(५) उपशम श्रेणि में मरा जीव अहमिन्द्र होता है । पृ. ३५१

**जयधवल पु. ८ :-**

(१) अपकर्षण सम्बन्धी विधान । पृ. २४२

**जयधवल पु. ९ :-**

(१) प्रथम बार उत्पन्न सम्यक्त्व का नाश जरूरी नहीं । पृ. ३१०

(२) अनुभाग काण्डक द्वारा अनन्त बहुभाग प्रमाण अनुभाग का ही घात हो यह नियम नहीं है, अनन्तवां भाग आदि भी घातित हो सकते हैं । पृ. १२८

**जयधवल पु. १० :-**

(१) सम्मूर्च्छन तिर्यंच के सम्यक्त्व तथा संयमासंयम होता है । पृ. ६४

(२) नरक में संख्यात बहुभाग जीव (यानी सर्वाधिक जीव) तो क्रोधी ही होते हैं । पृ. ३५

(३) अर्द्धपुद्गलपरावर्तन शेष रहने के प्रथम समय में सम्यक्त्व ग्रहण किया । पृ. ९२, १३८

(४) अनन्तानुबंधी विसंयोजक भी सासादन में आता है । तथा पृ. १२४ ११६ (यह भी देखें ४/२४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


**जयधवल पु. ११ :-**

(१) सम्यग्मिथ्यात्वी संयम को नहीं पाता । पृ. ५६

(२) वेदक सम्यक्त्व से च्युत होकर कोई जीव अधिक से अधिक ७ दिन रात तक मिथ्यात्वी नहीं होता और मिथ्यात्व को त्याग कर अधिक से अधिक ७ दिन रात तक कोई जीव वेदक सम्यक्त्वी नहीं होता । पृ. १५२

(३) सम्यक्त्व से च्युत : ऐसे प्रथम समयवर्ती मिथ्यात्वी का मरण संभव नहीं (यह भी देखें गो.क.पृ. २३८ मुख्तारी टीका) पृ. १४७

**जयधवल पु. १२ :-**

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान में सातिशयमिथ्यात्वी के अविपाक निर्जरा (गुणश्रेणि) । पृ. २६४

(२) लोभ के २० पर्यायवाची शब्द - काम, राग, निदान, छन्द, सुत, प्रेय दोष स्नेह अनुराग आशा मूर्च्छा इच्छा आदि हैं । पृ. १९२

(३) आहारकद्विक् की उद्वेलना बिना उपशमसम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती । पृ. २०९

(४) हमारे आयु कर्म की नित्य उदीरणा हो रही है । पृ. २२०

(५) समय का अर्थ काल ही नहीं, व्यवस्था भी है, समय का अर्थ कषाय भी है । पृ. १४१

(६) कर्म स्थिति के समस्त ही निषेकों में लता दारु अस्थि व शैल, चारों प्रकार का अनुभाग पाया जाता है । पृ. १५८

(७) उपशान्त का अर्थ अनुदय है । पृ. १६७

(८) अनुभाग काण्डक घात (विशुद्ध जीव के) अशुभ कर्मों का होता है । पृ. २६१

(९) प्रथम समयवर्ती सम्यक्त्वी मिथ्यात्व के तीन टुकड़े करता है । पृ. २८१ (जयध. ३/१९५-९६, ४/२५, ४१९, क.पा.सु.पृ. ६२८ आदि)

(१०) प्रथम बार सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद मिथ्यात्व में जाना जरूरी नहीं । पृ. ३१७

**जयधवल पु. १३ :-**

(१) अनन्तानुबंधी का अन्तरकरण नहीं होता । पृ. २००

(२) मनुष्यों में क्षायिक सम्यक्त्वी संख्यात हजार हैं । पृ. १०

(३) दो मत :- पृ. २१२, २१६, २५९, ४६, ५४ आदि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(४) संयमासंयम के माहात्म्य से निरन्तर गुणश्रेणि निर्जरा होती है। पृ. १२४, १२९

(५) प्रथम, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ गुणस्थान का जघन्य काल क्षुद्रभव से भी कम है, यानी १/२३/.०३३३/.३३३ सैकण्ड से कुछ कम है। पृष्ठ १३४ (और भी देखें क.पा.सु.पृ. ६७५, ल.सा.गा. १७८, धवल ६/२७४ धवल ४/४०७ तथा जैनगजट २९-८-६६ ईस्वी मुख्तारी लेख आदि)

(६) म्लेच्छों में धर्मकर्म की प्रवृत्ति असंभव है। पृ. १४०

(७) म्लेच्छों में भी, परिवर्तन विशेष की स्थिति में, धर्म-संयम संभव है। पृ. ०-१८१

(८) दर्शन, चारित्र मोह की उपशामना, चारित्रमोह क्षपणा में ही अन्तरकरण होता है, अन्यत्र नहीं। २०० (द्रष्टव्य पृ. २०)

(९) तीर्थंकर सत्वी जीव भी उपशम श्रेणि चढ़ते हैं।

जयधवल पु. १४ :-

(१) उदयावली में प्रविष्ट स्थिति की उपशामना नहीं होती। पृ. १६

(२) सम्यक्त्वी के बंध की अपेक्षा सत्व सर्वकाल संख्यातगुणा होता है। पृ. १७५, १४३

(३) संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवलियों का एक उच्छ्वास होता है। पृ. १३०

(४) श्रेणि से उतरते जीव के प्रतिसमय अनन्तगुणीहीन-अनंतगुणीहीन विशुद्धि होती है। पृ. ५२, ९४

(५) श्रेणि चढ़ने वाले के काल से उतरने वाले के काल छोटे होते हैं। पृ. ७५-७६

(६) सर्वत्र अनिवृत्तिकरण परिणाम समान नहीं होते। दर्शनमोहोपशामक के करणत्रय से चारित्रमोहोपशामक के करणत्रय अनंतगुणे विशुद्ध हैं। पृ. १४९, १५०

(७) ध्यान की भूमिका में होता तो श्रुतज्ञान ही है। पृ. १५९

(८) एक ही समय में उत्कर्षण तथा अपकर्षण दोनों सम्भव हैं। पृ. ३१९

जयधवल पु. १५ :-

(१) एकेन्द्रिय से सीधी मनुष्य पर्याय व मोक्ष सम्भव है। पृ. ११७ (द्रष्टव्य - ति.प. ५/३१४ पृ. १७३ महासभा प्रकाशन आ. विशुद्धमति जी)

(२) जघन्य अनुभाग वाले परमाणु में भी अनन्त अवि. प्रतिच्छेद होते हैं। पृ. १६३

(३) एक स्थितिविशेष (यानी एक निषेक) में उत्कृष्टतः असंख्यातभवसंचित कर्म होते हैं। पृ. १६८, २१२, १९७, १९२ आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(४) अभव्यों से अनन्तगुणा = सिद्धों के अनन्तवें भाग। पृ. २७६, ९१, २१५

जयधवल पु. १६ :-

(१) विकल श्रुतज्ञान से भी श्रेणि चढ़ना सम्भव है। पृ. २६

(२) अन्तरंग तथा बहिरंग कारण से जीव सम्यक्त्व पाता है। पृ. १९०

(३) संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्तादि लक्षण वाली प्रायोग्य लब्धि है। पृ. १८८

(४) उदीरणा से सर्वत्र उदय असंख्यात गुणा ही होता है। पृ. ७५-७६

(५) बारहवें गुणस्थान में प्रथम व द्वितीय शुक्ल ध्यान होते हैं। पृ. १२४ (धवल १३/८१)

(६) केवली के असाता का उदय अकिंचित्कर होता है। पृ. १३४

(७) स्थितिकाण्डक घात, अनुभाग काण्डक घात, गुणश्रेणि : ये सयोग केवली के चरमसमय तक होते हैं। पृ. १७१

(८) पूज्य भगवद्वीरसेन स्वामी शब्दब्रह्म, गणधर तथा सर्वज्ञ (सर्वज्ञवत्) थे। पृ. १४६
इस प्रकार धवलत्रय का एक दृष्टि से सार-संक्षेप में पूरा हुआ।

इस प्रकार गुरुजी का व्यक्ति-कृतित्व, गुरुजी के समाधान तथा धवल, महाधवल, जयधवल का सार संक्षेप (धवलत्रय के अमृतकण) पूरा हुआ।

दि. १०-४-१९९३ ई., वैशाख कृ. ४ को उक्त लेख संपूर्ण हुए। (पण्डित जी की जन्म तिथि)

विनीत

जवाहरलाल मोतीलाल जैन, भीण्डर

एवं

श्रीमती कैलाश जैन, M.A., भीण्डर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्याख्यान - २

# आयु कर्म : एक अनुशीलन

**आयु :-**

प्रवचनसार में लिखा है कि अवधारणनिमित्तम् आयुः प्राणः, भवधारण के निमित्तभूत आयु प्राण होता है । (प्र.सा.टीका त.प्र.१४६) जीवन के परिणाम का नाम आयु है । अथवा जिसके सद्भाव में आत्मा का जीवनपना होता है तथा जिसके अभाव में मृत्यु कही जाती है उस भवधारण को ही आयु कहते हैं । (राजवार्तिक ८/१०/२)

**आयु कर्म का लक्षण :-**

भवधारण कराना आयु कर्म की प्रकृति है. आयुषो भवधारणम् (सर्वार्थसिद्धि ८/३) अथवा जिसके द्वारा नारक आदि भव को जाता है वह आयु कर्म है (अनेन नारकादि भवम् एतीत्यायुः) जो भवधारण के प्रति जाता है वह आयु कर्म है (धवल १३/५) सारतः आयुकर्म विवक्षित गति में जीव का अवस्थान (टिकाव) करता है । जैसे काष्ठ का खोड़ा उसके छिद्र में जिसका पाँव आ जावे उसको वहीं रोक देता है - स्थित कर देता है उसी तरह आयुकर्म जिस गति सम्बन्धी उदयरूप होता है उस ही गति में जीव की स्थिति करता है (गो.क.जीवतत्त्व.२०)

**आयु के भेद व बन्ध-उदय :-**

आयु के चार भेद होते हैं - नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायु । चारों आयु का योग्य गतियों में बंध भी होता है तथा सत्व भी । परन्तु उदय तो अपनी-२ गति में ही होता है । यथा - नरकगति में ही नरकायु का उदय होता है, पर नरकायु का बन्ध तो तिर्यंच व मनुष्यगति में भी हो जाता है । तिर्यंच गति में ही तिर्यंचायु का उदय होता है, पर तिर्यंचायु का बंध तो नरक तिर्यंच मनुष्य व देव किसी भी गति में हो सकता है । मनुष्यगति में ही मनुष्यायु का उदय होता है, पर मनुष्यायु का बंध तो चारों गतियों में हो सकता है । इसी तरह देवगति में ही देवायु का उदय होता है । परन्तु देवायु का बंध तो मात्र तिर्यंच व मनुष्य ही कर सकते हैं । इस प्रकार उदय व बंध के स्वामियों का विवेचन किया गया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


जीव के जिस भव की आयु बंधती है उसे वहीं उसी भव में जाना पड़ता है, वह बदल नहीं सकती। जैसे किसी ने तिर्यंच आयु का बंध कर लिया तो वह बाद में सम्यग्दृष्टि भी क्यों नहीं हो जाए, पर तिर्यंचायु को नष्ट नहीं कर सकता, उसे तो मर कर तिर्यंच ही बनना पड़ेगा। यह बात जरूर है कि सम्यक्त्व के प्रभाव से वह तिर्यंचों में से सुखी व श्रेष्ठ तिर्यंचों (भोगभूमिज) में जन्म ले लेता है। पर तिर्यंच आयु को काट नहीं सकता (धवल १०/२३९)

**आयु बन्ध का कारण -**

आयु का बंध जीव मध्यपरिणामों से, छहों लेश्याओं में से किसी भी लेश्या के होते हुए कर सकता है (धवल १२/२७ तथा महाबन्ध पु.२ पृ.२७८-२८१ तथा धवल ८/३२०-३५८ संपादक पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री)

यदि यह कहा जाए कि गोम्मटसार जीवकाण्ड बड़ी टीका पृ.९१३ में तो लिखा है कि कपोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश के आगे तथा तेजो लेश्या के उत्कृष्ट अंश के पहले ही आयुबंध योग्य ८ अंश कहे हैं। तो उत्तर यह है कि उसमें भी छहों लेश्याएँ आ गई हैं। इसके विशेष परिज्ञान के लिए पं. रतनचन्द्र जी मुख्तार द्वारा लिखित गोम्मटसार जीवकाण्ड की बड़ी टीका पृ.७११ तथा वहाँ का स्पष्टीकरण पढ़ना चाहिए। आयुबन्ध के योग्य ८ मध्यम अंश निम्न होते हैं जिनसे कि आयुबन्ध होता है :-

१. उत्कृष्ट कापोत कृष्ण-नील मध्यम

२. कृष्ण नील कापोत मध्यम, जघन्य पीत

३. कृष्ण नील कापोत पीत मध्यम, जघन्य पद्म

४. कृष्णादि पाँच मध्यम तथा जघन्य शुक्ल

५. जघन्य कृष्ण, शेष पाँच लेश्या मध्यम

६. जघन्य नील तथा चार मध्यम

७. जघन्य कापोत तथा तीन शुभ लेश्या मध्यम

८. मध्यम पद्म शुक्ल तथा उत्कृष्ट पीत

इस प्रकार उत्कृष्ट कापोत अंश से उत्कृष्ट पीत लेश्यांश के पूर्व तक ८ लेश्यांश हो जाते हैं, जो छहों लेश्या स्वरूप हैं तथा आयुबंधों के कारण होते हैं। गो.जी. बड़ी टीका (शास्त्राकार) में प्रदत्त चित्र का स्पष्टीकरण न हो पाने से ही आम व्यक्ति को यह शंका हो जाया करती है कि उत्कृष्ट कापोत से उत्कृष्ट पीत के मध्य छहों लेश्या कैसे आ सकती है, पर ऐसा नहीं है। कृष्ण नील तथा कापोत लेश्याओं के उदय से नरकायु का बंध होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है (किण्हा य णीलकाऊणुदयादो बंधिऊण णिरयाऊ ॥ ति.प. अधिकार २ गाथा २९३-९४) नील कापोत लेश्यारूप परिणाम तिर्यंचायु के बंध के कारण हैं (त.सार ४/३५-३९) कापोत पीत लेश्यारूप परिणाम मनुष्यायु के बंध के कारण हैं। (राजवार्तिक ६/१७/१/५२६) पीत पद्म शुक्ल देवायु के बंध के कारण हैं। (रा.वा.६/२०/१/५२७) तीनों अशुभ लेश्याओं में चारों आयुओं का बंध होता है। पीत व पद्म में नरकायु को छोड़कर शेष तीन आयु का बंध होता है। शुक्ल लेश्या में मनुष्य व देवायु का ही बन्ध होता है। (महाधवल २/२७८-२८१ धवल ८/३२० से ३५८ आदि) कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अंशों और पीतपद्म शुक्ल लेश्याओं के उत्कृष्ट अंशों में से कुछ अंश ऐसे हैं जिनमें आयु बन्ध नहीं होता। सामान्यतः छहों लेश्याओं में आयु बंध होता है।[१]

आयुबंध के विस्तार से कारणों को जानने के लिए निम्न स्थल दृष्टव्य हैं :-

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय- ६, सर्वार्थसिद्धि अध्याय- ६, राजवार्तिक अध्याय- ६, श्लोकवार्तिक अध्याय ६,

तिलोयपण्णत्ति २/२९३-९४ - ३०३, ४/३६५ आदि ४/५०४, ४/२५००-२५११, ३/१९८ आदि, ८/५५६ आदि, ७/६१६, ८/६४६ आदि

तत्त्वार्थसार ४/३०-. गोम्मटसार कर्मकाण्ड ८०४ आदि भगवती आराधना ४४६ टीका, १८१ टीका त्रिलोकसार ४५० आदि।

इनमें विस्तार से आयु बंध के विविध लोकगम्य कारणों का निर्देश किया गया है।

**गतियों में आयु परिमाण -**

प्रथम नरक में जघन्य आयु १० हजार वर्ष होती है, उत्कृष्ट १ सागर होती है। दूसरे नरक में जघन्य १ समय अधिक १ सागर तथा उत्कृष्ट तीन सागर है। तीसरे नरक में जघन्य आयु १ समयाधिक ३ सागर तथा उत्कृष्ट ७ सागर है। चौथे नरक में जघन्य आयु १ समय अधिक ७ सागर तथा उत्कृष्ट १० सागर है। पाँचवी पृथ्वी में जघन्य आयु समयाधिक १० सागर उत्कृष्ट १७ सागर है। छठी पृथ्वी में जघन्य आयु १ समयाधिक १७ सागर तथा उत्कृष्ट आयु २२ सागर है। सातवीं पृथ्वी में जघन्य आयु १ समय अधिक २२ सागर उत्कृष्ट आयु ३३ सागर है।

तिर्यंचों में पृथ्वी कायिक (शुद्ध) की उत्कृष्ट आयु १२००० वर्ष तथा खर पृथ्वी कायिक की २२ हजार वर्ष है। शेष अप् तेज वायु वनस्पति द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय की उत्कृष्ट आयु क्रमशः ७ हजार, ३ दिन रात, ३ हजार वर्ष, १० हजार वर्ष, १२ वर्ष, ४९

१. जो आचार्य भोग भूमि में अकाल मरण मानते है (धवल १५/२९९ तथा संतकम्मपंजिया पृ.७८) उनके मतानुसार भी भोग भूमि में विविध आयु विकल्प बन जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दिनरात तथा ६ मास है। इन सब की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए।

*(ति.प.५/२८१-२९०)*

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में मत्स्यादि की १ करोड़ पूर्व, गोह, नेवला, सरीसृपादि की ९ पूर्वांग, सर्प की ४२ हजार वर्ष, कर्म भूमिज भेरुण्ड आदि पक्षी की ७२ हजार वर्ष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय की १ करोड़ पूर्व उत्कृष्ट आयु होती है। इन सबकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त होती है।

भोगभूमि में तिर्यंच व मनुष्य की १ पल्य, दो पल्य तथा ३ पल्य क्रमशः जघन्य मध्यम व उत्तम भोगभूमि में आयु होती है। यह उत्कृष्ट आयु है। जघन्य आयु जघन्य भोगभूमि में १ समयाधिक पूर्वकोटी, मध्यम भोगभूमि में १ पल्य तथा उत्तम भोगभूमि में दो पल्य जाननी चाहिए। (ति.प. भाग २ पृ. १२६ आ. विशुद्धमति जी) एक समय अधिक पूर्व कोटी आदि आयु विकल्प भरत ऐरावत क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। कहा भी है कि उत्सर्पिणी काल का आश्रय लेकर भरत और ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों में पूर्वकोटि के ऊपर एक समय अधिक आदि के क्रम से तीन पल्य प्रमाण काल तक निरन्तर आयु वृद्धि देखी जाती है। *(धवल १४/३५९)*

भरत ऐरावत क्षेत्र में भोगभूमि रचना जब बनती है तभी यहाँ वृद्धि तथा ह्रास होने से (त. सू.३/२७) आयु के जघन्य तथा उत्कृष्ट विकल्प बनते हैं। कहा भी है - इन छह कालों के आदि व अन्त में जीवों की आयु का प्रमाण क्रम से तीन पल्य और दो पल्य (यानी प्रथम काल के आदि में जीवों की आयु का प्रमाण तीन पल्य तथा अन्त में दो पल्य होती है। दूसरे काल के प्रारम्भ में दो पल्य तथा अन्य में एक पल्य आयु होती है। तीसरे काल के आदि में आयु १ पल्य तथा अन्त में पूर्व कोटि प्रमाण होती है। चौथे काल में आदि में पूर्व कोटि और अन्त में १२० वर्ष प्रमाण है। पंचमकाल के आदि में १२० वर्ष और अन्त में २० वर्ष प्रमाण है। छठे काल के आदि में २० वर्ष और अन्त में १५ वर्ष आयु होती है।(त्रिलोकसार गा.७८२) तथा ति.प. ५/२९०-२९२) परन्तु यह जघन्य उत्कृष्ट विकल्प भरत-ऐरावत की अपेक्षा ही है - देखो त्रि.सा. गाथा.७७९ की उत्थानिका में स्पष्ट कहा है कि अब भरत ऐरावत क्षेत्र में काल का कथन करते हैं।

इस प्रकार भोगभूमि में भरत ऐरावत को छोड़कर अन्य जो भोगभूमियाँ हैं - हेमवत, 'हरिवर्ष देवकुरु हैरण्यवत् रम्यक् तथा उत्तरकुरु,' इन शाश्वत भोगभूमियों में तो आयु स्थिर रूप से ही रहती है। कहा भी है -

**वरमज्झिमवर भोगज तिरियाणं तियदुगेगपल्लाउ**
**अवरे वरम्मि तेत्तियमविण्णसर-भोग भूवाणं॥**

*(ति.प. ५/२८९ पृ.१६७ महासभा प्रकाशन)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अर्थ - उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य भोगभूमिज तिर्यंचों की आयु क्रमश ३, २, १ पल्य है। अविनश्वर भोग-भूमियों में जघन्य व उत्कृष्ट आयु उतनी ही है।

(२) महापुराण ९/९१ में कहा है कि सर्वे चिरायुषः सर्वे समसुखोदयाः सर्वेऽपि समसंभोगाः, अर्थात् सभी भोग भूमिज अपनी-२ भोगभूमि में सब समान सुखी, सब समान भोग भोगनेवाले तथा सब दीर्घ जीवी होते हैं। ऐसी स्थिति में शाश्वत भोगभूमि में देवकुरु इत्यादि में जघन्य व उत्कृष्ट आयु मानने पर कोई अल्पजीवी तथा कोई दीर्घजीवी सिद्ध हो जाएँगे जो सर्वे दीर्घजीविनः इत्यादि विशेषताओं के विरुद्ध होगा।

(३) सर्वार्थसिद्धि ३/२९-३० में देवकुरु उत्तरकुरु, हरिवर्ष रम्यक तथा हैरण्यवत हेमवत क्षेत्रों की आयु ३, २, १ पल्य तो कहीं पर जघन्य व उत्कृष्ट का भेद नहीं किया। जिससे जाना जाता है कि भोगभूमि (शाश्वत) में जघन्य व उत्कृष्ट आयुरूप भेद न होकर निर्विकल्प ३, २, १ पल्य प्रमाण आयु उत्तम मध्यम व जघन्य भोगभूमि में होती है। यथा- त्रिपल्योपमस्थितियो देवकुरवकाः। द्विपल्योपमस्थितयो हरिवर्षकाः। एकपल्योपमस्थितयो हैमवत्का : (स.सि. ३/२९) इतना ही नहीं, इसी सूत्र (३/२९) के पूर्वसूत्र २७ तथा पश्चात् वर्ती सूत्र ३९ में तो स्पष्टतः अनुभव आयुः प्रमाणादिकृतो वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः (स.सि.३/२७)। तथा उत्कर्षेण पूर्वकोटि स्थितिकाः जघन्येन अन्तर्मुहूर्तायुषः (स.सि. ३/३१) इन जघन्य व उत्कृष्ट आयु या आयुर्विकल्प प्रतिपादक टीकाओं से स्पष्ट है कि टीकाकार पूज्यपाद ने स.सि. ३/२९ की टीका लिखते समय स्पष्टतः शाश्वत भोग-भूमियों में जघन्य व उत्कृष्ट भेद रहित मात्र निर्विकल्प एक ही आयु मानी है।

(४) राजवार्तिककार ने भी ३/२९-३० में स.सि. के समतुल्य ही कथन किया है।

(५) सर्वार्थसिद्धि तथा राजवार्तिक ३/२७ की टीकाओं में स्पष्टतः भरतैरावत के प्रथमकाल के आदि समय में ही मनुष्यों को उत्तरकुरु तुल्य बताया तथैव द्वितीयकाल (सुखमा) के आदि में ही मनुष्यों को हरिवर्ष तुल्य बताया। तथैव तृतीयकाल (सुखम दुःखमा) के आदि में ही होने वाले मनुष्यों को हैमवतक्षेत्र के मनुष्यों के समान बताया। जिससे स्पष्ट है कि शाश्वती भोगभूमि में तो आयु, भोग आदि आदि से अन्त तक एक से हैं (आयु घटती बढ़ती नहीं)। यही सब कथन ति.प. ४/१७०३, १७४४, २१४५ में है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


णवरि यदवड्ढिदरुवं परिहीणं हाणिवडि्ढिहिं ।
सुसमसुसमम्मि सा हाणीए विहीणा एदास्सिं णिसहसेलेय ।
अवसेसवणाओ ...
अवसेसवण्णणाओ...

(६) जंबूदीवपण्णत्ति २/११८-१२४ तथा ३/२३६ तथा लोक विभाग ५/१२ में भी शाश्वती भूमि को लक्ष्य कर ३, २, १ पल्य आयु ही बताई, जघन्य उत्कृष्ट भेद सम्भव नहीं होने से कहे ही नहीं ।

(७) सम्यग्दृष्टि यदि भोग भूमिज तिर्यंचों में जाते हैं तो वहाँ उनकी जघन्य आयु पल्य के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट ३ पल्य होती है ।(जयधवल २/२६१) यह जो कहा है वह भी भरतैरावत की होनेवाली अस्थायी भोगभूमियों की अपेक्षा ही कहा प्रतीत होता है । (धवल १४/३५९) इस प्रकार शाश्वत भोग-भूमियों में जघन्य-उत्कृष्ट भेद रहित १, २, ३ पल्य (जघन्य मध्यम व उत्तम भोग-भूमि में) ही आयु बन्ध तथा आयुभोग होता है, यह स्थिर नियम जानना चाहिए ।

(८) लेकिन इन सब के बावजूद भी धवल पृ.१४ पृ.३९८-९९ के अनुसार शाश्वत भोगभूमि में भी जघन्य व उत्कृष्ट आयु होने का उपदेश (एकमत के अनुसार) दिया गया है । वहाँ दोनों मत लिखे गए हैं । एकमत के अनुसार उत्तम भोग-भूमि में तीन पल्य ही स्थिति होती है, यह कहा है । (उत्तरकुरु देवकुरु मणुआ सव्वे ति पलिदोवमठिदिया चेव) तथा दूसरा मत "अथवा" करके दिया है । वह निम्न प्रकार है -

समयाहिय दुपलिदोवमे आदि कादूण जाव समऊणतिण्णिपलिदोवमाणि त्ति ट्ठिदिवियप्पपडिसेहट्ठं वा तिपालिदोवमग्गहणं । ण च सव्वट्ठसिद्धिदेवाउअं व णिवियप्पं तदाउअं, तप्परुवयसुत्तवक्खाणाणमणुवलंभादो ।

**अर्थ** - एकसमय अधिक दो पल्य से लेकर एक समय कम तीन पल्योपम तक के स्थिति विकल्पों का (इस विवक्षित - प्रकृत मनुष्य के लिए) प्रतिषेध करने के लिए सूत्र में "तीन पल्य की स्थिति वाले", इस पद का ग्रहण किया है । अतः सर्वार्थसिद्धि के देवों की आयु जिस प्रकार निर्विकल्प (जघन्य - उत्कृष्ट भेद रहित) होती है उस प्रकार वहाँ (यानी उत्तरकुरु देवकुरु) की आयु निर्विकल्प नहीं होती, क्योंकि इस प्रकार की प्ररूपणा करने वाला सूत्र और व्याख्यान उपलब्ध नहीं होता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सारतः एकमत के अनुसार देवकुरु उत्तरकुरु में भी आयु के जघन्य व उत्कृष्ट भेद होते हैं।[१]

इस प्रकार मनुष्य व तिर्यंच आयु सम्बन्धी संक्षिप्त विवेचन किया गया। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य व तिर्यंच की आयु क्षुद्रभव प्रमाण होती है। (गो.जी. १२३-२५)

देवों में भवनवासियों में जघन्य आयु १० हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट आयु १ सागर है। सौधर्म युगल में साधिक २ सागर, सानत्कुमार युगल में साधिक ७ सागर, ब्रह्मब्रह्मोतर युगल से लेकर प्रत्येक युगल में आरणअच्युत युगल तक क्रमशः १० सागर, १४ सागर १६ सागर, १८ सागर, २० सागर तथा २२ सागर, प्रमाण उत्कृष्ट आयु होती है। १०, १४, १६, १८ सागर को "साधिक" कहना चाहिए। प्रथम ग्रैवेयक में २३ सागर उत्कृष्ट आयु, दूसरे में २४ इस तरह १-१ सागर बढ़ते-२ अन्तिम ग्रैवेयक में ३१ सागर उत्कृष्ट आयु होती है। अनुदिश ९ विमानों में ३२ सागर तथा अनुत्तर ४ विमानों में ३३ सागर उत्कृष्ट आयु होती है। सर्वार्थसिद्धि में आयु उत्कृष्ट व जघन्य भेद रहित मात्र ३३ सागर ही होती है।

सौधर्म ऐशान में जघन्य आयु साधिक १ पल्य है। पूर्व-पूर्व स्वर्ग की उत्कृष्ट स्थिति आगे-२ के स्वर्ग की जघन्य स्थिति होती है। जैसे सौधर्मयुगल की उत्कृष्ट स्थिति साधिक २ सागर है। उसी में १ समय मिला देने पर वह सानत्कुमार युगल की जघन्य आयु होती है। इसी तरह सानत्कुमार की उत्कृष्ट स्थिति साधिक ७ सागर में १ समय मिला देने पर वही ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग की जघन्य आयु स्थिति होती है। इसी तरह आगे भी कहना चाहिए।

व्यंतरों में जघन्य आयु १० हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट आयु साधिक १ पल्य है। अर्थात् कोई प्रेतात्मा व्यंतर बन कर हमें पीढ़ियों तक कष्ट दे सकता है, क्योंकि वह तो कम से कम १० सहस्त्र वर्ष आयु वाला होता है जबकि हम तो प्रायः १०० वर्ष भी पार नहीं कर पाते। कष्ट निवारण हेतु जिनदेव की शरण ही अमोघ शस्त्र है।

ज्योतिषी देवों में जघन्य आयु साधिक १/८ पल्य तथा उत्कृष्ट आयु साधिक १ पल्य है। सभी लौकान्तिक देवों की आयु उत्कृष्ट जघन्य विकल्प रहित ८ सागर होती है।

*(सर्वार्थसिद्धि ४/२८-४२)*

---

१. जो आचार्य भोगभूमि में अकाल मरण मानते हैं (धवल १५/२९९ तथा संतकम्मपंजिया पृष्ठ ७८) उनके मतानुसार भी भोगभूमि में विविध आयु विकल्प बन जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


१. विशेष - एक मत के अनुसार सर्वार्थसिद्धि में जघन्य आयु पल्य के असंख्यातवें भाग कम ३३ सागर है तथा उत्कृष्ट आयु ३३ सागर है । यथा -

तेत्तीस उवहि उवमा पल्लांसंखेज्ज भागपरिहीणा

सव्वट्ठसिद्धिणामे मण्णंते केई अवराऊ ॥

*(तिलोयपण्णत्ति = ८/५१४ पृ.५६६*

*(महासभा प्रकाशन) तथा लोकविभाग १०/२३४)*

२. विशेष - यद्यपि, देव नारकी, चरमशरीरी तथा असंख्यात वर्षायुष्क जीवों की अकालमृत्यु नहीं होती, ऐसा सर्वजन प्रचलित तथा बहु-आगम-उपलब्ध वचन है । (त.सू.२ २/५३ स.सि. आदि) परन्तु प्राचीन शास्त्र संतकम्मपंजिया पृ.७८ में यह लिखा है कि इस विषय में दो मत है । किन्हीं आचार्यों के मत से अकालमरण भोगभूमि में होता है तथा किन्हीं आचार्यों के मत से भोगभूमि में अकालमरण नहीं होता है । इसी बात को ध्यान में रखकर उन्होंने वहाँ उदाहरण भी दिया है । यथा -

तिपलिदोवमाउगं बंधिय कमेण तत्थुप्पज्जिय सव्वलहुमाऊगं घादिय तथ्थ कदलिघादस्स पढमणिसेयग्गहणादो। तं कुदो। भोग भूमीए कदलिघादमत्थि त्ति अभिप्पाएण। पुणो भोग भूमीए आउघस्स घादं णत्थि त्ति भणंत आइरियाणमभिप्पाएण...

*(धवल १५ परि पत्र ७८ सम्पादक*

*- सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री एवं बालचन्द्र सि. शा.)*

तीन पल्योपम प्रमाण आयु का बंध करके क्रम से वहाँ उत्पन्न होकर सर्वलघु काल में आयु का घात करके वहाँ कदलीघात का प्रथम उदीयमान निषेक का ग्रहण करना चाहिए। प्रश्न - भोगभूमि में अकालमरण कैसे सम्भव है। उत्तर - भोगभूमि में अकालमरण होता है, ऐसा कहने वाले आचार्यों के अभिप्राय से यह कहा है । पुन: भोगभूमि में आयु का घात नहीं होता, ऐसा कहने वाले आचार्यों के मतानुसार मनुष्यायु का उत्कृष्ट प्रदेशोदय ऐसे होगा कि ....

*(पृ.७८ सतकर्मदंनिका)*

धवल पु.१५ पृ. २९९ में भी भोगभूमि में अकालमरण का स्पष्टत: समर्थन है ।इस अकाल मरण से वहाँ विविध आयु विकल्प भी बन जाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**आयु बन्ध का समय -**

सब जीव वर्तमान अर्थात् भुज्यमान आयु को भोगते हुए आगामी आयु का बंध करते ही हैं, अन्यथा मरण होकर आगे की गति में जाना भी सम्भव नहीं हो सकता। उस आगामी आयु के बंधने का नियम यह है कि वर्तमान संपूर्ण आयु के दो तिहाई भाग बीतने पर आगामी आयु का बंध होता है। इसके पूर्व कदापि, कथमपि नहीं। यदि उस समय भी आयु बंध योग्य परिणाम न हो सके तथा आयु बंध न हो सका तो जीव उस शेष एक तिहाई भाग आयु के भी पुनः एक तिहाई भाग शेष रहने पर आयु बंध योग्य होता है। यदि तब भी आयु बंध योग्य परिणाम नहीं हुए तो पुनः तब शेष बची आयु के पुनः त्रिभाग प्रमाण आयु शेष रहने पर जीव आयुबंध के योग्य होता है। इस तरह आगे भी कहना चाहिए। इसी क्रम से कुल ८ अवसर प्राप्त होते हैं, जिन्हें ८ अपकर्ष कहते हैं। यदि इन आठों अपकर्षों में भी आयु बंध नहीं कर सका तो फिर जीव मरण से असंक्षेपाद्धा (आवलि का संख्यातवां भाग) काल पूर्व आयु बंध अवश्य कर लेता है। संसारी जीवों के आयु बंध बिना मरण भी सम्भव नहीं।

**उदाहरण** - जैसे किसी कर्म भूमिया मनुष्य या तिर्यंच की आयु ८१ वर्ष की है। उस ८१ वर्ष में से दो त्रिभाग अर्थात् ५४ वर्ष बीत जाने पर शेष १ त्रिभाग (२७ वर्ष) का प्रथम अन्तर्मुहूर्त काल आयु बंध योग्य काल है। शेष २७ वर्ष के दो त्रिभाग (१८ वर्ष) बीत जाने पर और एक त्रिभाग अर्थात् ९ वर्ष आयु शेष रहने पर प्रथम अन्तर्मुहूर्त में आयु बंध योग्य होता है। शेष ९ वर्ष के दो त्रिभाग = ६ वर्ष बीत जाने पर अर्थात् आयु में ३ वर्ष शेष रहने पर पुन ३ वर्षों के प्रथम अन्तर्मुहूर्त में आयु बंध योग्य होता है। शेष तीन वर्षों में भी दो त्रिभाग बीत जाने पर और एक त्रिभाग अर्थात आयु में एक वर्ष शेष रहने पर प्रथम अन्तर्मुहूर्त आयुबंध योग्य काल होता है। शेष १ वर्ष के दो त्रिभाग (८माह) बीतने पर तथा आयु के ४ मास शेष रहने पर पुनः आयु बंध योग्य होता है। इसी प्रकार आगे भी शेष एक त्रिभाग का प्रथम अन्तर्मुहूर्त आयुबन्ध योग्य काल होता है। ऐसे कुल ८ अवसर (अपकर्ष) ही होते हैं।

कोई जीव आठों अपकर्षों में आयुबंध करते हैं। कोई ७ अपकर्षों में आयु बंध करते हैं। इस तरह चलते-२ कोई दो अपकर्षों में तथा कोई मात्र एक अपकर्ष में ही आयुबंध करते हैं। कोई एक भी अपकर्ष में आयुबंध नहीं कर पाते तो फिर ऐसे जीव मरण के असंक्षेपाद्धा काल पूर्व आयुबंध अवश्य करते हैं। इस प्रकार एक पर्याय में एक जीव ८ बार आयु का बंध (अधिकतम ८ बार) कर सकता है। पर भिन्न-२ आयु का नहीं, बल्कि एक बार जहाँ आयु बंधी वहाँ-२ ही ८ बार बंधती है, ऐसा जानना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


**आयुबंध सम्बन्धी विशिष्ट नियम -**

(१) भुज्यमान (वर्तमान) आयु के दो त्रिभाग बीत जाने पर आयु बंध होता है, इससे पूर्व नहीं । यह व्यवस्था कर्मभूमि की अपेक्षा है । परन्तु भोग भूमिज जीव तथा देव नारकी भुज्यमान आयु के ६ मास शेष रहने पर आगामी आयु के बंध के योग्य होते हैं । (धवल १०/२३४) गोम्मटसार कर्मकाण्ड बड़ी टीका में दो प्रकार के कथन पाए जाते हैं । गा.१५८ व ६४० तदनुसार भोग भूमिया मनुष्य व तिर्यंच के भुज्यमान आयु में ९ मास शेष रहने पर; दूसरे मत से ६ मास शेष रहने पर परभविक आयुबंध की योग्यता होती है । यहाँ भी आठ अपकर्ष होते हैं । यथा ६ मास शेष रहने पर आयुबंध होगा । दूसरा अपकर्ष-२ मास आयु शेष रहने पर आयुबंध हो सकता है । फिर २० दिन शेष रहने पर आयुबंध योग्य तीसरा अवसर (अपकर्ष) है । फिर ६-२/३ दिन शेष रहने पर चौथा आयु बंध योग्य अवसर आता है । इस तरह आगे भी त्रिभाग-२ शेष रहने पर कहना चाहिए जब तक कि कुल ८ अपकर्ष नहीं हो जाएँ ।

(२) आठों अपकर्ष कालों में आयु न बंधे तो अन्तिम अन्तर्मुहूर्त (असंक्षेपाद्धा काल से पूर्व) में आयु बंधती है ।

*(गो.क.५१८, १५८ टीका)*

(३) आठ अपकर्षों में पहली बार बिना द्वितीयादि बारों में, पूर्व में जो आयु बंधी उससे अधिक, हीन या समान आयु बंधती है । यदि अधिक आयु बाद के अपकर्ष में बंधती है तो जो अधिक स्थिति बंधी उसकी प्रधानता जाननी तथा बाद वाले अपकर्ष में यदि कम आयु बंध हो तो जो पहले अधिक स्थिति बंधी थी उसकी प्रधानता जाननी । (गो.क. ६४३ जी.प्र.) अर्थात ८ अपकर्षों में बंधी हीनाधिक सर्व स्थितियों में जो अधिक है वह ही उस आयु की बंधी हुई स्थिति समझनी चाहिए ।

*(धवल १४/३६१)*

(४) देव, नारकी, चरमोत्तम देहवाले अर्थात् वर्तमान भव से मोक्ष जाने वाले, भोग भूमिया मनुष्य व तिर्यंच का अकाल मरण नहीं होता । (त. सू. २/५३, स.सि. २/५३ राजवा. २/५३/१-१०, धवल ९/३०६ आदि) परन्तु संतकम्मपंजिया के अनुसार कुछ आचार्य भोगभूमि में भी अकालमरण स्वीकार करते हैं । भोग भूमीए कदलीघादमत्थि त्ति अभिप्पाएण । -

*(धवल १५ परिशिष्ट पृ.७८)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(५) उत्कृष्ट अनुभाग बंध (आयु का) करने पर उसका भी धात हो सकता है। (धवल १२/२१) बद्ध देवायु की भी न्यूनता हो सकती है। *(धवल ४/२८३ आदि)*

(६) आयु के अनुभाग घात व स्थितिघात साथ-२ होते हैं। मात्र स्थिति घात या मात्र अनुभाग घात नहीं होते। *(धवल १२/३९५)*

(७) बध्यमान आगामी आयु का उदीरणा नहीं होती है। उदय भी नहीं। बद्ध परभव की आयु का अपकर्षण कर उन निषेकों को आबाधा के ऊपर निक्षिप्त जरूर किया जा सकता है। इसे अवलंबना करण कहते हैं। (धवल १०/३३०) परभव की बद्ध आयु का उदय तो मरने बाद ही हो सकता है।

(८) परभव की बंधी आयु का हर समय अपकर्षण हो सकता है, क्योंकि उसके अपकर्षण के लिए बंध-काल का नियम नहीं है। जिस जीव ने मिथ्यात्व अवस्था में सातवें नरक की आयु का बंध कर लिया हो तथा उसके पश्चात् उसको सम्यक्त्व प्राप्त हो गया हो तो वह जीव सम्यक्त्व के द्वारा सातवें नरक के स्थितिबंध को घटा कर (अपकर्षण कर) प्रथमनरक की आयु के समान कर लेता है। कहा भी है :- न नरकायुषः सत्वं तस्य तत्रोत्पत्तेः कारणं सम्यग्दर्शनासिना छिन्नषट्पृथिव्यायुष्कत्वात्। न च तच्छेदोऽसिद्धः आर्षात्तत्सिद्ध्युपलम्भात् (धवल १/३२४)
प्रथम नरक के सिवा शेष द्वितीयादि पृथ्वी की आयु बांध कर सम्यक्त्वी हुए जीव के नीचे की छह पृथ्वी की आयु का अपकर्षण हर समय हो सकता है। राजा श्रेणिक के ३३ सागर की नरकायु का बंध हुआ था। किन्तु सम्यग्दर्शन होने पर नरकायु का अपकर्षण होकर ८४००० वर्ष रह गई। सम्यग्दृष्टि के नरकायु का बंध नहीं होता। इस प्रकार आयुबंध के अभाव में भी परभविक आयु का अपकर्षण हुआ है। (करणानुयोग प्रभाकर रतनचन्द्र मुख्तार जै.ग. २७-८-६४ पृ. IX) नरकायु की बंध व्युच्छिति तो प्रथम गुणस्थान में ही हो जाती है। अतः सम्यक्त्वी श्रेणिक के, या अन्य सम्यक्त्वी के नरकायु के बंधने का प्रश्न ही नहीं उठता।

*(गो.क. ९५, पं.स., धवल, ८ पृ. ४२-४३, १२३ जयधवल १४ पृष्ठ ३४ महाधवल १/३९ आदि)*

(९) परन्तु बद्ध आगामी आयु का उत्कर्षण हर समय नहीं होता। वह तो तभी होगा जबकि पुनः अगले किसी अपकर्ष में आयुबन्ध हो रहा हो। यदि परभव की आयु बंध के पश्चात् दूसरे किसी अपकर्ष में अधिक स्थिति वाली परभविक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


आयु का पुनः बंध हो तो पूर्व अपकर्ष में बद्ध आयु निषेकों का उत्कर्षण हो सकता है। बिना बंध के पूर्व सत्वद्रव्य का उत्कर्षण नहीं हो सकता। क्योंकि उत्कर्षण, बंध होने पर ही होता है।

*(धवल १०/४३, जयधवल ५/३३६, जय धवल ६/९५, ७/२४५ तथा ज. ध. १४/३०६)*

नवीन स्थिति बंध में (भी पूर्व की अपेक्षा) अधिक स्थिति बंध हुए बिना उत्कर्षण के द्वारा केवल सत्ता में स्थित कर्मों की स्थिति में वृद्धि नहीं हो सकती। (जयधवल १/१४६) सारतः परभविक आयु का उत्कर्षण केवल ८ आठ अपकर्ष कालों में आयु बंध के समय ही होता है, अन्य समयों में उत्कर्षण नहीं होता।

(१०) क्षायिक सम्यक्त्वी या कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वी ही सातवें आदि नरक की आयु छेदकर प्रथम नरक की आयु स्वरुप कर देते हैं। अन्य कोई नहीं।

(११) किसी भी अपकर्ष के प्रथम समय में आयु का जितना स्थिति बंध होता है वह ही स्थितिबंध उस विवक्षित अपकर्ष के अनन्तर समयों में भी होता है। उससे हीन या अधिक स्थिति बंध नहीं होता। विशेष यह है कि अपकर्ष के प्रथम समय में आयु का जो स्थितिबंध होता है वह तो अवक्तव्य बंध कहलाता है, क्योंकि उससे पूर्व समय में आयु का बंध नहीं हो रहा था। फिर अनन्तर द्वितीयादि समय में यद्यपि स्थितिबंध की हीनाधिकता नहीं होती है तथापि आबाधाकाल प्रतिसमय कम हो रहा है, अतः "आबाधा सहित आयु स्थिति" की अपेक्षा स्थितिबंध भी प्रति समय कम होता रहता है, ऐसा कहा जाता है, किन्तु आबाधा रहित स्थिति बंध की अपेक्षा तो आयु बंध विवक्षित अपकर्ष में हीनाधिक नहीं होता। **अर्थात् विवक्षित किसी एक ही अपकर्ष में अन्तर्मुहूर्त तक समान स्थितिक आयुबन्ध ही होगा।**

*(महाधवल २/१४५-४६ तथा १८२)*

(१२) विवक्षित अपकर्ष में आयु का जितना स्थिति बंध है, दूसरे अपकर्ष में उससे हीनाधिक स्थितिबंध हो सकता है, क्योंकि आयु के स्थितिबंध में असंख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात गुणहानि, संख्यात गुणहानि, संख्यात भाग हानि, तथा असंख्यात भाग हानि : ये चार वृद्धि तथा चार हानि सम्भव है।

*(धवल १६/३७३-७४)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(१३) उत्तमसंहनन वालों का भी अकालमरण हो सकता है अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का भी अकाल मरण हुआ है। (राजवार्तिक २/५३/९)

(१४) जयधवल पु.१ पृ.३६१ (नया संस्करण पृ. ३२८) में लिखा है कि चरम देहधारीणमवमच्चुवज्जियाणं : अर्थात् चरमशरीरियों का अकालमरण नहीं होता। तत्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक (२/५३) आदि में जयधवल के मत का ही समर्थन है।

परन्तु प्रभाचन्द्राचार्यविरचित तत्त्वार्थवृत्तिपद, श्रुतसागर सूरि की तत्त्वार्थवृत्ति में २/५३ में लिखा है - "चरमदेहस्य उत्तमविशेषणात् तीर्थंकर देहो गृह्यते। ततो न्येषां चरमदेहानामपि गुरुदत्तपाण्डवादीनां अग्न्यादिनामरणदर्शनात्।"

भावार्थ: चरमशरीरियों में मात्र तीर्थंकरों का ही अकालमरण नहीं होता। शेष चरमशरीरियों का अकालमरण (गुरुदत्त पाण्डव आदि का) देखा जाता है। इस प्रकार दो मत हैं।

(१५) परभव की आयु का बंध होने पर वर्तमान आयु का कदलीघात यानी अकालमरण नहीं होता। जैसे आपने हमने देवायु का बंध कर लिया है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि अब हमारा (बद्धपरभवायुष्क होने से) अकालमरण नहीं हो सकता। *(धवल १०/२३७)*

राजाश्रेणिक का अकालमरण नहीं हुआ था। क्योंकि इससे पूर्व ही उन्हें नरकायु का बंध हो चुका था। अत: बद्धायुष्क के अकालमरण सम्भव नहीं। चाहे श्रेणिक ने तलवार की धार पर सिर मार कर अपना मरण किया हो पर उस समय श्रेणिक के आयु निषेक पूरे हो गए थे। अत: अकालमरण नहीं हुआ।

(१६) अकालमरण में स्थितिकाण्डक घात नहीं होता। किन्तु अपकर्षण तथा उदीरणा द्वारा भुज्यमान आयु का स्थितिघात - कदलीघात हो जाता है।

(१७) किसी भी जीव के कदलीघात यानी भुज्यमान आयु का ह्रस्वीकरण रूप क्रिया एक समय में हो जाती है।

*(धवल १० पृ.२४४, ३८४, २५६, ३७२ आदि)*

(१८) सूक्ष्म एकेन्द्रियों में भी कदलीघात (अकालमरण) होता है।

*(धवल १४/३५६)*

(१९) विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, उच्छवास-निरोध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अन्नपाननिरोध, शस्त्र इत्यादि बाह्यकारण विशेष से अकालमरण होता है। हिम, अग्नि, पानी, बहुत ऊंचे वृक्ष और पर्वतों पर चढ़ने और गिरने के समय होने वाले अंग भंग से, रसविद्या के योगधारण और अनीति के नाना प्रसंगों से आयु क्षीण होती है। *(भावपाहुड २५-२६, सुखबोधा वृत्ति २/५३, तत्त्वार्थवृत्ति, श्लोकवार्तिक २/५३, गो.क. ५७ आदि)*

(२०) जितनी भुज्यमान आयु शेष रहने पर आयु-बंध होवे, तब उस बध्यमान आयु की आबाधा उस शेष भुज्यमान आयु प्रमाण ही होती है। जैसे किसी ने वर्तमान आयु में १० वर्ष शेष रहने पर आगामी भव की आयु बांधी तो आगामी आयुबंध की आबाधा भी १० वर्ष होगी। सारत: बध्यमान आयु की आबाधा शेष भुज्यमान आयु प्रमाण होती है।

*(गो.क. ११७, धवल ६ पृ.१६६ तथा महाधवल २/१८)*

## अकालमरण के लिए पूर्व भव में दो बार आयु बंध जरूरी नहीं

पं. मोतीचन्द जी कोठारी व्याकरणाचार्य ने "क्रमबद्धपर्याय समीक्षा" नामक पुस्तक लिखी है। पुस्तक में आपने एक भूल कर दी है। वह करणानुयोग सम्बन्धी भूल है। जिस भूल को आपने इस पुस्तक के पृष्ठ ३०९-१०, ३१७, ३२०, ३२२-२४, ३२७, ३४०, ३८२ पर बार-२ दोहराई है। आपका संक्षेप में मत इस प्रकार रहा है -

> जिस जीव को आगे की पर्याय में अकालमरण होना है वह अकालमरण वाले भव से पहले वाले भव में दो बार आयुबंध करता है। उसमें पहली बार तो ज्यादा आयु का बंध करता है दूसरी बार (दूसरे किसी अपकर्ष मे) उतनी ही आयु का बंध करता है जितनी आयु में कि आगामी भव में अकालमरण होना है।

उनके समस्त कथन के सार का सार यह है कि अकाल मरण के पूर्व वाले भव में वह जीव जितना आगामी भव में जीना है उतनी आयु भी बांधता है तथा अधिक आयु भी बांधता है। उदाहरण - जैसे मैं अभी मनुष्य हूँ तथा बाद में तिर्यंच बनूँगा। तथा तिर्यंच भव में १०० वर्ष की आयु लेकर जाऊँगा और अकाल मरण द्वारा ५० वर्ष में ही मर जाऊँगा। तो मैं अभी की मनुष्य पर्याय में दो बार आयु बंध करूँगा। पहली बार १०० वर्ष की, दूसरी बार ५० वर्ष की। यह पण्डित मोतीचंद जी का कथन है। जिसका अर्थ यह हुआ कि अकालमरण प्रमाण आयु को जीव पूर्व भव में बाँध कर आता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उन्हीं के शब्दों में :-

(क) पृ. ३०८-९-१० पर लिखा है - किसी जीव के पहले १०० वर्ष आयु का बंध हुआ। जिस समय आयु कर्म का बंध हुआ उस समय आयु का स्थिति अनुभाग बंध भी हुआ। बाद में परिणाम विशेष के कारण ६० वर्ष की आयु का बंध हुआ। जिस समय ६० वर्ष की आयु का बंध हुआ उस समय जिस समय आयु के १०० वर्षों का बंध हुआ था उस समय जो स्थिति - अनुभाग का बंध हुआ था उस समय के स्थिति अनुभाग बंध से ६० वर्षों के बंध के समय होने वाले (बंधने वाले) स्थिति व अनुभाग के कम होने का नाम ही अपकर्षण है। यदि १०० वर्षों का पूर्व में होने वाला बंध ही नहीं होता तो उस समय स्थिति व अनुभाग बंध ही नहीं होने पाते। तो फिर इन (दीर्घ) स्थिति - अनुभाग बंधों के अभाव में ६० वर्ष वर्षों की आयु बंध के समय होने वाले स्थिति बंध तथा अनुभाग बंध कम होते हैं ऐसा कैसे कहा जा सकता है। तो फिर अपकर्ष का भी अभाव हो जाता है। बध्यमान आयु में होने वाले अपकर्षण का अभाव होने से भुज्यमान आयु में उदीरणा कैसे होगी।..... १०० वर्ष की आयु का बंध होने के अनन्तर जब परिणाम विशेष के कारण ६० वर्ष की आयु का बंध होता है। तब १०० वर्ष की आयु का अपवर्तन होता है, अतः १०० वर्ष की आयु ही अपवर्त्यायु कही जाती है।( पृ.३०९)

(ख) केवली भगवान् के ज्ञान में पहले (एक बार) बंधे हुए आयु की अपेक्षा जो मरण होने वाला था वह न होकर बाद में बंधे हुए आयु की अपेक्षा जो मरण होता है उसी को अकाल मरण कहते हैं। वस्तुतः पूर्वबद्ध आयु की अपेक्षा मरण न होकर उत्तर काल में बंधे हुए आयु की अपेक्षा होने वाला मरण अकाल मरण ही है, स्वकालमरण नहीं। (पृ.३१०)

(ग) आयुबन्ध कुर्वतां जीवानां परिणामवशेन बध्यमानस्य आयुषः अपवर्तनम् अपि भवति। तदेव अपवर्तनघात इत्युच्यते। उदीयमानायुरपवर्तनस्य एव कदलीघाताभिधानात्

अर्थ - आयुकर्म का बन्ध करने वालों जीवों के परिणामवश बध्यमान आयु का अपवर्तन भी होता है। वही अपवर्तनाघात कहा जाता है। क्योंकि उदीयमान आयु के अपवर्तन को ही कदलीघात कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि बध्यमान आयु की स्थिति और अनुभाग में जिस प्रकार अपवर्तन होता है उसी प्रकार भुज्यमान आयु की स्थिति और अनुभाग में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


भी अपवर्तन होता है। (पृ.३११)

(घ) राजा श्रेणिक ने जो नरकायु की ३३ सागर की स्थिति बांधी थी वही उसका पूर्व बंध था और क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने पर (यानी सम्यक्त्व अवस्था में) ८४००० वर्ष की जो स्थिति आयु की बांधी थी वह श्रेणिक के आयु का दूसरा बंध है। (पृ.३१२ व ३१९) सातवें नरक की बंध तथा पहले नरक का बंध भगवान् को ज्ञात था। (पृ.३१३)

(ङ) यह अपवर्तन (अकालमरण) पूर्व भव में बद्ध आयु की उसी (पूर्व) भव में होने वाले अपकर्षण के बिना नहीं हो सकता। (पृ.३१४)

(च) औपपादिक आदि जीवों की, पूर्व भव में उत्तर भव (देवायु आदि) की आयु का और वर्तमान पर्याय की आयु का अपवर्तन नहीं होता। (पृ.३१४)

(छ) इस समय की निश्चिति, पूर्व-भव में इस भव की आयु स्थिति का जो बंध होता है उस स्थिति बंध के कारण होती है। इस उत्तर भव की आयु की स्थिति का जो पूर्व भव में बंध होता है उस बंध के अनन्तर परिणाम के कारण इस भव की स्थिति का जो फिर से (दूसरी बार) बंध होता है वह स्थितिबंध पूर्व से न्यून होता है। इसी न्यून स्थिति (बंध) का नाम अपसरण है। परिणाम विशेष के कारण पूर्वभव में फिर से जो न्यून स्थितिक बंध हुआ था उसके अनुसार ही पूर्वकाल में प्रथमबद्ध आयुकर्म की स्थिति के अनुसार उत्तर भववर्ती जीव की आयु होती है। दूसरे आयुबंध की न्यूनस्थिति के अनुसार, भुज्यमान आयु के काल में, पूर्व निश्चित प्रथम आयु की पूर्णता की अन्यूनता का अभाव पूर्वक, पूर्वभव में द्वितीय बार जो न्यून आयु बंधी थी उसके अनुसार उत्तर भव में जीव का मरण होता है। यह आयु कर्म की न्यून स्थिति पूर्ण होने पर जो मरण होता है उसी का नाम अकालमरण या कदलीघात है। इस मरण का काल भी नियत है और वह पूर्वभव में द्वितीय बार किए गए आयुस्थिति बंध द्वारा नियत किया गया है (पृ.३१७)

(ज) क्षायोपशमिक ज्ञान वाला भी पूर्व भव में किए गए आयु कर्म के दो बंध, अपकर्षण : तथा उत्तर भव में होने वाली उदीरणा इनको सर्वज्ञोपज्ञ आगम द्वारा ही जानता है। (पृ.३२०)

(झ) एक जीव ने पूर्व भव में ८० वर्ष की स्थिति बांधी, फिर ४० वर्ष की भी बांधी। जिस पूर्व भव में आयु कर्म की स्थिति बांधी जाती है उसी भव में स्थित्यपकर्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



होता है। उत्तर भव में उसके दोनों बंध (८० वर्ष व ४० वर्ष के) सत्ता में होकर द्वितीय बंध का उदय होता है। (पृ.३२२)

(ञ) (८० वर्ष की उम्र बांध कर ४० वर्ष में मरने का अर्थ यह हुआ कि उसने) :- ८० वर्ष तथा ४० वर्ष दोनों आयु बंध भिन्न-२ काल में पूर्व भव में किए हैं। तथा ८० वर्ष की आयुस्थिति का अपकर्षण होकर ४० वर्ष रह गई। ८० वर्ष की आयु का अपकर्षण हो जाने से वह उत्तर भव में उदय को प्राप्त नहीं होता। अपकर्षण के बाद ४० वर्ष की आयु स्थिति का बंध होता है। इस उत्तर भव में ४० वर्ष की स्थितिवाला आयुकर्म उदय को प्राप्त होता है तथा ४० वर्ष की मर्यादा पूर्ण हो तो ही मरण होता है, पहले नहीं (पृ.३२४, ३८२)

(ट) पूर्व भव में पूर्व बद्ध आयु का अपकर्षण होकर द्वितीय आयुकर्म की स्थिति के अनुसार उत्तर भव में जन्म होकर आयु की स्थितिकाल समाप्त होकर जो विषादि से मरण होता है उसे अकाल मरण कहते हैं। (३२६-२७)

(ठ) प्रथम आयु के स्थिति बंध के अनुसार आयु कर्म का क्षय होने का काल ही मरणकाल अर्थात् स्वकालमरण है। पूर्वबद्ध आयु की स्थिति का अपकर्षण होकर पूर्वबद्ध आयु के स्थिति व अनुभाग से न्यून स्थिति-अनुभाग वाला आयु कर्म दूसरी बार बंधा। इस द्वितीय आयुबंध के अनुसार जो जीव का मरण होता है उसे अकालमरण कहते हैं। (पृ.३४०)

(ड) जिस मरण में आयु के अपकर्षण तथा उदीरणा होते हैं वह मरण अकालमरण है। जिस मरण में ये दोनों नहीं होते वह कालमरण है। (पृ.३४०)

इस प्रकार (क) से (ड) तक इन १३ बिन्दुओं द्वारा पं. मोतीचन्द जी कोठारी की मान्यता को मैंने स्पष्ट किया है। अब इन (क) से (ड) तक के बिन्दुओं पर समीक्षा की जाती है। श्रद्धेय पण्डित जी करणानुयोग के इस सूक्ष्म गहन सागर में प्रविष्ट तो हो गए, पर पूर्णतः उलझ गए हैं।

**समीक्षा -**

बिन्दु (क) में जो पण्डित जी ने लिखा है उससे अत्यन्त स्पष्ट है कि पण्डित जी (मोतीचन्द जी कोठारी) अपकर्षण के लिए बंध को आवश्यक मानते हैं। परन्तु अपकर्षण के लिए बंध की आवश्यकता नहीं होती। बंधुक्कड्डणाकरणं सगसग बंधोत्ति (गो.क. ४४४) इस नियम के अनुसार बंध और उत्कर्षणा करण जब तक बंध होता है तब तक होते हैं, अन्यत्र नहीं। परन्तु अपकर्षण या अपवर्तन तो बंध के बिना भी होता है। इसीलिए भगवान् सयोग केवली के ८५ प्रकृतियों का अपकर्षण होता रहता है, जबकि बंध तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


वहाँ साता का ही होता है। (ओक्कड्डुणा करणं पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरिमो त्ति गो.क. ४४५) जयधवला १४/३४ - ३५ में लिखा है - नरकायु का बंध तो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही होता है, पर अपवर्तना असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होती है। तिर्यंचायु का बंध सासादन गुणस्थान तक होता है पर अपवर्तना (अपकर्षण) आदि अवस्थाएँ संयतासंयत गुणस्थान तक होती हैं। मनुष्यायु का बंध तो चौथे गुणस्थान तक ही सम्भव है पर अपकर्षण (अपवर्तना) सयोग केवली गुणस्थान तक बन्ध बिना भी होता रहता है। देवायु का बंध तो सातवें गुणस्थान तक ही होता है, पर अपवर्तन उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है।

**मूल वाक्य इस प्रकार हैं -**

> णिरयाउअस्स बंधकरणभुक्कड्डुणाकरणं च मिच्छाइट्ठिम्मि अत्थि। उवरिमगुणट्ठाणेसु णत्थि। ओवट्टणकरणं जाव असंजद्सम्भाइट्ठि ति। तिरिक्खाउअस्स बंधणकरणं...जाव सासणसम्माइट्ठि त्ति।.... सेसाणं (ओवट्टणादीणं) संजदासंजदम्मि वोच्छेदो। मणुस्साउअस्स बंधणकरणं उक्कड्डुणं च जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति।... ओकड्डुणा जाव सजोगिचरिमसमओ त्ति। देवाउअस्स बंधण करणं. जाव अप्पमत्तो त्ति।... ओकड्डुणकरणं संतं च जाव उवसंतकसाओ त्ति।
>
> *(जयधवला १४/३४-३५)*

इस प्रकार यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि आयुओं के बंध रुक जाने के बाद भी ऊपर के गुणस्थानों में उन-२ आयुओं का अपकर्षण (अपवर्तन) तो होता है। अतः मात्र उत्कर्षण के लिए उसी प्रकृति का बंध भी जरूरी है, अपकर्षण के लिए नहीं। ज. ध. १४/३६ ८७। अतः पण्डित जी बिन्दु (क) में चूक गए हैं। १०० वर्ष की आयु बांधने वाले के यदि परिणामों वश आयु का अपकर्षण (अपवर्तन) कराना है तथा ६० प्रमाण करना है तो उसे नवीन तौर से आयु बंध करना आवश्यक नहीं, वह उन १०० वर्षों की आयु का अपवर्तन करके, छेद करके, धात करके उसे ६० प्रमाण रख सकता है। बद्ध आयु के न्यूनीकरण (अपवर्तन) के लिए पुनः नवीन आयुबंध करने की जरूरत ही नहीं। क्योंकि अपकर्षण या अपवर्तन में बन्ध की जरूरत नहीं होती। (देखें जैनगजट दि.२७.८.६४ पृ. IX ब.रतनचन्द्र मुख्तार)

पण्डित जी अपकर्षण (अपवर्तन) की परिभाषा समझने में भी भूलकर गए हैं। अधिक स्थिति बंध के बाद हीन स्थिति बंध होना अपकर्षण नहीं है। जैसा कि पं. जी ने लिखा है। बल्कि किसी स्थितिबंध के होने के आवली बाद उस बंधे कर्म की स्थिति -

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अनुभाग का घटाना अपकर्षण है, न कि न्यून स्थिति बंध होना।

(ख) ख बिन्दु में पण्डित जी जो लिखते हैं वैसा संसार भर के किसी भी दिगम्बर जैन साहित्य या सिद्धान्तग्रन्थ में नहीं लिखा है। पण्डित जी के मतानुसार तो जितने वर्ष आयु में अकालमरण होता है उतनी ही आयु उसने द्वितीय आयु बंध में बांधी है, तो फिर वह अकालमरण ही कैसा ? सिद्धान्त शिरोमणि करणानुयोग। प्रभाकर रतनचन्द मुख्तार लिखते हैं कि अमुक जीव की अपमृत्यु अवश्य होगी, इस प्रकार का कोई आयुबंध नहीं होता। पं. रतनचन्द्र मुख्तार व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ. ५६२ तथा अकालमरण (शास्त्री परिषद् प्रकाशन जून १९६५) पृष्ठ २:३ आदि

(२) सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र सि. शास्त्री लिखते हैं कि - श्रद्धेय पं. मोतीचन्द जी कोठारी यहाँ चूक गए हैं। उन्होंने अकालमरण विषयक जो यह पूर्व में दो बार आयु बंध होने का कथन (प्ररूपण) किया है, वह मिथ्या है। 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।'

*(दि ११.३.८८, हस्तिनापुर प्रवास)*

(३) पूज्य १०५ आर्यिका विशुद्धमति माताजी (त्रिलोकसार आदि की टीकाकार) लिखती हैं-

जो आपने (जवाहरलाल जी ने) लिखा है वह सत्य है। मोतीचंद जी द्वारा यह बड़ी भूल हुई है। आप पं. मोतीचन्द्र जी को इस विषय में अवश्य लिखें।

*(दि २८.१०.८७ भीलवाड़ा प्रवास)*

(ग) बिन्दु ग में पण्डित ने जो लिखा है वह गलत है। मूल वाक्यों में तो इस प्रकार लिखा है नहीं। मूल संस्कृत वाक्यों में तो मात्र इतना लिखा है कि "बध्यमान आयु का अपवर्तन तो अपवर्तना घात कहलाता है, कदलीघात नहीं। क्योंकि उदीयमान (भुज्यमान) आयु का अपवर्तन ही कदलीघात कहलाता है।" पं. जी ने यह मूल संस्कृत वाक्य कहाँ से लिए, यह भी नहीं लिखा। अस्तु, ये वाक्य कर्मकाण्ड की जीवतत्त्व प्रदीपिका गाथा ६४३ (ज्ञानपीठ प्रकाशन भाग २ पृ. ९८३) टीका से यहाँ लिए गए हैं।

इस कथन से यह निष्कर्ष निकालना कि "बध्यमान आयु स्थिति में जैसे अपवर्तन होता है वैसे ही भुज्यमान में भी अपवर्तन" यह कथंचित् ठीक भी कहा जा सकता है। पर इससे यह सिद्धान्त बनाना कि "भुज्यमान आयु में कदलीघात के लिए बध्यमान में भी वैसी आयु का दूसरी बार बंध होना चाहिए", हास्यास्पद है।

बिन्दु (घ व ङ) में पण्डित जी ने लिखा है कि श्रेणिक राजा ने क्षायिक सम्यक्त्व होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पर प्रथम नरक की ८४ हजार वर्ष प्रमाण आयु दूसरी बार बांधी। इस पर हमारा निवेदन है कि संसार भर के किसी भी दिगम्बर जैन आगम में ऐसा नहीं लिखा है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि, या कैसा भी सम्यग्दृष्टि नरकायु का बंध करता है। (गो.क. ९५, धवल ८/४२, ४३, जयधवल १४/३४, महाधवल १/३९, धवल ८/१२३, पंचसंग्रह आदि) अत: पं. सा. का यह कथन अत्यन्त मिथ्या है। फिर दूसरा हमारा निवेदन है कि श्रेणिक को जो पण्डित जी के कथनानुसार दो आयु बंध हुआ है तथा श्रेणिक प्रथम नरक की ८४ हजार वर्ष आयु ही भोगेंगे, यह भी निश्चित है। अर्थात् श्रेणिक महाराज दो बार आयुबंध करके नरक पर्याय में दूसरी बार की न्यून आयु ही भोगेंगे। इस स्थिति में श्रेणिक के नारकी पर्याय में भी ८४००० वर्ष आयु पूर्ण होने पर अकाल मरण मानना पड़ेगा। क्योंकि पण्डित जी ने ही बिन्दु ख : ठ व छ में लिखा है कि "पहले बार आयु बांधी उसकी अपेक्षा मरण न होकर दूसरी बाद बद्ध आयु की अपेक्षा जो मरण होता है वही अकाल मरण है।" इस नियम के अनुसार तो श्रेणिक महाराज का प्रथम नरक में ८४००० वर्ष पूर्ण करने पर जो मरण होगा वह अकालमरण कहलाएगा। परन्तु यह भी मिथ्या है। (देखो आयु बंध संबंधी विशिष नियम नं. ४ में लिखा है कि नारकी का कभी भी अकाल मरण नहीं होता) इस प्रकार पण्डित जी ने यहाँ एक ही कथन में दो भयंकर भूलें कर दी हैं।

बिन्दु ज में पण्डित जी लिखते हैं कि औपपादिक जीवों के (देवादि के) पूर्व भव में (यानी मनुष्य व तिर्यंच पर्याय में) उत्तर भव (देवादि भव) की आयु का अपवर्तन नहीं होता।

परन्तु यह कथन भी मिथ्या है। (देखो आयु बंध सम्बन्धी विशिष्ट नियम नं.५)

विस्तार इस प्रकार है -

(१) एक्कोविराहिदसंजदो वेमाणिय देवेसु माउइंबंधिदूण तमोवट्टणाघादेण घादिय भवणवासियदेवेसु उववण्णो। अर्थ - विराधना की है संयम की जिसने ऐसा कोई संयमी मुनि वैमानिक देवों में आयु को बांध करके, फिर बाद में अपवर्तना घात से घात करके भवनवासी देवों में उत्पन्न हुआ। (धवल ४/३८३, ३८५ आदि)

(२) उक्कस्साउअं बंधिय पुणो तं घादिय मिच्छत्तं गंतूण अग्गिदेवेसु उववण्ण-दीवायण ... अर्थ - उत्कृष्ट संयम निधान १०८ मुनि द्वीपायन ने उत्कृष्ट आयु (अनुत्तर विमानवासी देवों की आयु) बांधी थी। फिर उसका अपवर्तना घात कर मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अग्निकुमार जाति के भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवों में वे द्वीपायन उत्पन्न हुए। (धवल १२/१९-२१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(३) ऐसे ही कथन त्रिलोकसारादि से भी जानने चाहिए। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पण्डित जी सा. यहाँ भी भूल कर गए हैं।

बिन्दु झ व ञ में पण्डित सा. लिखते हैं कि दो बार आयुबंधक के आगामी भव में द्वितीय बार की आयु का ही उदय होता है, पर सत्ता में दोनों आयु रहती है। यह कथन उनकी पूर्णतः कर्मसिद्धान्त-विषयक भूल का परिचायक है। नियम यह है कि शेष भुज्यमान आयु प्रमाण ही आबाधा होने से (देखो - आयुबंध संबंधी विशिष्ट नियम नं.२०) निश्चित रुप से दोनों आयु कर्म के निषेक साथ-२ उदय में आएंगे। इसी तरह मान लो किसी जीव ने आठों अपकर्षों में आयु बांधी है तो आगामी भव में आयु का उदय होने पर आठों अपकर्षों सम्बन्धी निषेक साथ-साथ में उदित होंगे। क्योंकि सभी आयु: समयप्रबद्धों की आबाधा तो पूर्व भव में ही पूरी हो गई अतः सभी के प्रथम निषेकों का उदय आना यहाँ (वर्तमान भव के प्रथम समय में) अत्यन्त न्याय्य है। इसीलिए तो प्रायः सर्व कर्मों के एक एक समयप्रबद्ध का उदय (अर्थात् असंख्यात निषेक समुदाय का युगपत् उदय) प्रतिसमय कहा जाता है। (गो. जी. २५८ टीका)

बिन्दु ड में पण्डित जी ने लिखा है कि जिस मरण में अपकर्षण व उदीरणा होते हैं वह मरण अकाल मरण है। सो यह भी अत्यन्त त्रुटित कथन है। चारों ही गतियों में चारों भुज्यमान आयुओं की उदीरणा प्रतिसमय प्रायः होती ही रहती है। मनुष्यायु की उदीरणा छठे गुणस्थान तक निरन्तर होती ही रहती है। शेष तीन आयुओं की उदीरणा भी अपने-अपने सम्भव गुणस्थानों में निरन्तर होती रहती है। मात्र इतनी विशेषता है कि चारों आयु की उदीरणा उस-उस भव में मरण की अन्तिम आवली के समय नहीं होती। शेष सर्वत्र, आपके हमारे आयु कर्म की उदीरणा अभी निरन्तर होती रह रही है। केवल इतनी विशेषता है कि आपके हमारे मरण के समय अन्तिम आवली काल में उदीरणा नहीं होगी, तब मात्र उदय ही होगा। (पंचसंग्रह प्रा. पृष्ठ ५१९-२२ ज्ञानपीठ, सर्वार्थसिद्धि ज्ञानपीठ सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री का सम्पादन पृ.३४६-४७, राजवार्तिक पृ. ७३९-९४ भाग II ज्ञानपीठ, रा.वा. ९/३६/८-९ पृ. ६३१-३२ मूल, गो.क. २७८, करणदशक पृ. ६५ आदि)

तथा जहाँ उदीरणा होती है वहाँ अपकर्षण भी नियम से होता ही है, क्योंकि उदीरणा अपकर्षण पूर्वक ही होती है। जे कम्मक्खंधा ओक्कड्डिदूण फलदाइणो किरंति तेसिमुदीरणा त्ति सण्णा

अर्थ - जो कर्मस्कन्ध अपकर्षित कर फलदायक किए जाते हैं उनकी उदीरणा यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



संज्ञा है। (धवल ६/२१३) इस कारण जैसे उदीरणा आयु की सदा होती रहती है। इसीलिए तो सप्तम नरक के नारकी तथा सर्वार्थसिद्धि देव के एक आवलीकम ३३ सागरों तक निरन्तर उदीरणा, आयु कर्म की होती रहती है। (धवल १५/६३) : वैसे ही अपकर्षण भी आयु का नित्य होता रहता है। परन्तु विशेष इतना ज्ञातव्य है कि इस अपकर्षण व उदीरणा द्वारा आयु कर्म के उपरिम स्थितियों के निषेक पूर्ण शून्य या रिक्त नहीं हो जाते, क्योंकि किसी भी निषेक में से उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु (निषेक में असंख्यात लोक या पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो एक भाग आवे तत्प्रमाण परमाणु) ही अपकर्षण को प्राप्त होकर उदयावली में प्रविष्ट होते हैं तथा वे उदीरणा संज्ञा को प्राप्त होते हैं। (धवल १५/४३, धवल ६/२१४)

यदि यह पूछा जाए कि- "तो फिर आयु कर्म का कदलीघात किस का नाम है", तो उत्तर है कि - कदलीघात में शेष भोगने योग्य आयुकर्म के बचे निषेकों को नीचे की स्थितियों में जहाँ गिराया जाता है वहाँ कदलीघात नाम प्राप्त होता है। यह तब होता है जबकि बाहर विष ग्रहण करना, शस्त्र प्रहार आदि (देखो आयुबंध नियम न.१९) कारण मिलें। इस अकालमरण के लिए पूर्व भव में इतना ही आयुबंध हो, (जितने वर्षों में कि अकालमरण हो जाना है) ऐसा नहीं है। बल्कि ऐसा है कि जिसने मात्र एक बार आयु बंध किया हो उसका भी अकाल मरण हो सकता है। जिसने पूर्व भव में दो बार (दो अपकर्षों में) आयु बंध किया हो उसका भी अकालमरण हो सकता है। इस प्रकार जिसने तीन बार (तीन अपकर्षों द्वारा) या चार बार (यानी चार अपकर्षों द्वारा) या पाँच बार (यानी ५ अपकर्षों द्वारा) या ६ या ७ या ८ बार आयु बंध किया हो उसका भी अकाल मरण हो सकता है। अकालमरण के समय जितने आयु कर्म के निषेक भोगने योग्य कर दिए जाते हैं। अर्थात् अन्तर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों को छोड़कर शेष सब ऊपर के निषेक (पूरे-के पूरे निषेक) नीचे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति में डाल दिए जाते हैं तथा एक ही समय में यह सब काम हो जाता है। (धवल १० पृ.२४४ में सम्पूर्ण विधान दिखिए) विशिष्ट बात यह है कि जो जीव पूर्व भव में ज्यादा आयु बंध कर, फिर वर्तमान भव में उस बद्ध आयु से कम काल प्रमाण ही जीवित रहता है तथा विषादि से मरण करता है उसके ही कदलीघात मरण होता: है। कदलीघात मरण मान लो हमारा १० वर्ष की आयु में ही हो, इसका अर्थ यह लगाना कि पूर्व में मैंने १० वर्ष प्रमाण ही आयु के निषेक बांधे थे, यह मानना अत्यन्त हास्यास्पद है।

मान लो किसी जीव ने पूर्व भव में १०० वर्ष आयु बांधी तथा फिर मनुष्य बना। अब उसके मनुष्यायु के सता में १०० वर्ष प्रमाण निषेक हैं। परन्तु १० वर्ष जीकर ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बाल्यावस्था में ही यदि तालाब कुएँ बावड़ी में गिरने से उसकी अकाल मृत्यु हो गई तो उसका अर्थ यह हुआ कि उसके शेष ९० वर्ष प्रमाण आयु निषेकों की लड़ी भी, उस मरण के अंतिम अन्तमूहूर्त में, कदलीघात (अपवर्तन) द्वारा, उदय को प्राप्त हो गई । यही अकालमरण या कदलीघात है । यह आगम का हार्द होने से समीचीन प्ररूपण है ।

परन्तु ऐसा मानना कि - "वह १० वर्ष प्रमाण ही जीवित रहा इसलिए पूर्व भव में आयुबंध भी उसने १० वर्ष किया : अथवा १०० वर्ष एवं १० वर्ष ऐसे दो आयुबंध किए", हास्यास्पद है ।

पण्डित मोतीचन्द जी के शेष बिन्दुओं की समीक्षा ऊपर समीक्षित प्रकरण से ही हो जाती है ।

**कदलीघात के लिए दो बार आयुबंध नहीं होता,**
**इस पर भगवद् वीरसेन स्वामी का मत :-**

(१) भगवद् वीरसेन स्वामी धवल १४ पृ.३५२ से ३५४ में लिखते हैं कि :- एकेन्द्रिय जीव की जघन्य पर्याप्त निवृत्ति सबसे स्तोक है । अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य आयु बन्ध सबसे स्तोक है, क्योंकि वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । (यहाँ जघन्य निर्वृत्ति से जघन्य आयुबन्ध का ग्रहण करना चाहिए ।) फिर आगे कहा है कि उससे निर्वृत्ति स्थान (यानी आयुबन्ध के विविध विकल्प या भेद) संख्यात गुणे हैं । उससे जीवनीय स्थान (यानी जीने की आयु के भेद) विशेष अधिक हैं ।

शंका - जीवनीय स्थान बंधस्थान के समान न होकर विशेषाधिक कैसे हैं ?

समाधान - नहीं, क्योंकि भुज्यमान आयु का कदलीघात सम्भव होने से जघन्य निवृत्तिस्थान (= जघन्य आयुबंध रूप भेद) के नीचे भी जीवनीयस्थान (जीवन योग्य विविध आयु - विकल्प) उपलब्ध होते हैं ।(पृ. ३५४) ये जीवनीय स्थान संख्यात आवली प्रमाण अर्थात् असंख्यात होते हैं । (धवल १४/३५६-५७)

जघन्य निर्वृत्तिस्थान (जघन्य आयुबन्ध स्थान) के नीचे के ये जीवनीय स्थान जीवनीय स्थान ही हैं, निर्वृत्ति स्थान नहीं, क्योंकि यहाँ आयुबंध के विकल्पों का अभाव है । (अर्थात् जघन्य आयु बन्ध प्रमाण आयु से भी कम जिन-जिन जीवों की आयु होती है वह नियम से मात्र कदलीघात से ही प्राप्त होती है, बंध से नहीं । ऐसे आयु विकल्प भी असंख्यात होते हैं ।(धवल १४ पृष्ठ ३५५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(२) क्षुल्लकभवग्रहण सबसे स्तोक है। (धवल १४/३६१-६२) यहाँ क्षुल्लकभव ग्रहण से घात क्षुल्लक भवग्रहण अर्थात् कदलीघात से प्राप्त जघन्य जीवन स्वरूप जानना चाहिए। यह घात क्षुल्लक भवग्रहण सभी अपर्याप्त जीवों के समान ही होता है। इससे सूक्ष्मएकेन्द्रिय अपर्याप्त की जघन्य निर्वृत्ति (= जघन्य आयु बंध) संख्यातगुणा है। – पृ.३६३

(३) पृष्ठ ३६४ पर लिखा है कि एकेन्द्रिय जीव के निवृत्तिस्थान (आयुबन्धों विविध विकल्प) संख्यात गुणे हैं। (आयुबंधों के कुल विकल्प = उत्कृष्ट आयु बंध (२२ हजार वर्ष) - जघन्य आयु बंध (अन्तर्मूहूर्त) = अन्तर्मुहूर्त कम २२ हजार वर्ष प्रमाण होते हैं।)

इन आयुबंध विकल्पों से उसके जीवनीय स्थान विशेषाधिक होते हैं। (जीवनीय स्थान = आयु के वे स्थिति-विकल्प जिन-विकल्पों में जीव जी सकता है) ऐसे ही कथन पृ.३६५ आदि पर भी हैं।

उक्त तीन बिन्दुओं में से प्रथम बिन्दु का स्पष्टीकरण किया जाता है किसी सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याय ने जघन्य आयु बंध किया वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इससे कम आयु बंध सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याय के नहीं होता, यह अभिप्राय है। किसी ने इससे एक समय अधिक प्रमाण आयुबंध किया। यह दूसरा आयुबन्ध स्थान यानी निर्वृत्ति स्थान है। इससे दो समय अधिक आयु बंध करने पर तीसरा निर्वृत्ति स्थान प्राप्त होता है। इस प्रकार तीन समय अधिक, ४ समय अधिक इत्यादि के क्रम से निरन्तर आयुबन्ध के स्थान (यानी विकल्प) बाईस हजार वर्ष की आयु प्राप्त होने तक प्राप्त करने चाहिए। इतने एकेन्द्रिय में आयु बंध के विकल्प हैं यह कथनाभिप्राय है। इनसे ऊपर आयु बंध के विकल्प नहीं प्राप्त होते, क्योंकि एकेन्द्रियों में २२ हजार वर्ष से अधिक आयुबंध नहीं होता। इस प्रकार इतने आयुबन्ध स्थान प्राप्त हुए। (धवल १४/३५३) परन्तु जीवनीय स्थान इनसे भी अधिक होते हैं। यथा - उपर्युक्त समस्त आयुबंध विकल्पों प्रमाण तो एकेन्द्रिय जीव जीते ही हैं। परन्तु इनकी जो जघन्य बद्ध आयु है उससे नीचे प्रमाण आयु भी ये जीव कदलीघात क्रिया द्वारा प्राप्त कर लेते हैं और उतनी आयु बंध को कभी भी प्राप्त नहीं होती और ऐसे कदलीघात द्वारा प्राप्त जीवन विकल्प असंख्यात होते हैं, क्योंकि वे संख्यात आंवलियों प्रमाण होते हैं। कहा भी है - जहण्णणिव्वत्तिट्ठाणादो हेट्ठा जीवणियट्ठाणाणि चेव, ण णिव्वट्टिट्ठाणाणि (= आउअबंधट्ठाणाणि), (तत्थ) आउअबंधवियप्पाभावादो। (धवल १४/३५५) जघन्य आयुबंध स्थान के नीचे जीवनीय स्थान ही हैं, निर्वृत्तिस्थान नहीं, क्योंकि वहाँ आयु बंध के विकल्पों का अभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**कथन सार** - इसी तरह हम गर्भजों का भी जघन्य आयु बंध अन्तर्मुहूर्त. प्रमाण है तथा एक समय अधिक आयुबंध दूसरा आयुबंध का विकल्प है। दो समय अधिक आयुबंध आयुबंध का तीसरा विकल्प है। इस तरह एक समय बढ़ाते-बढ़ाते तीनपल्य तक के विकल्प आयुबंध के कहने चाहिए। बस, मनुष्यों में आयुबंध के स्थान इतने ही हैं, इनसे एक भी अधिक नहीं। परन्तु जीने के स्थिति विकल्प तो इनसे भी अधिक हैं और वह आधिक्य मात्र कदलीघात से प्राप्त होता है। जघन्य आयुबन्ध के नीचे असंख्यात ऐसे विकल्प प्राप्त करना चाहिए। इसीलिए कहा है कि गर्भजों में निर्वृत्तिस्थानों (आयुबंध स्थानों) से भी जीवनीयस्थान विशेषाधिक हैं। (धवल १४/३५८ = -३५९)

**सार** - उक्त समस्त कथन से स्पष्ट है कि औपपादिक तथा असंख्यात वर्षायुष्क को छोड़कर शेष में यानी कर्मभूमिज मनुष्य तिर्यंचों में जघन्य आयुबन्ध से कम स्थिति प्रमाण भी तिर्यंच मनुष्य जीते हैं तथा ऐसा कम स्थिति वाला जीवन वे कदलीघात प्राप्त करते हैं, मात्र कदलीघात से न कि आयुबंध से, अन्यथा निर्वृत्तिस्थानों (बंधस्थानों) तथा जीवनीय स्थानों के समान होने का प्रसंग आएगा जो कि अनिष्ट है। ऐसी स्थिति में पण्डित मोतीचन्द जी का यह कहना कि "कदलीघात ४० वर्ष प्रमाण ही आयु शेष कर देता है इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्व भव में उसने चालीस वर्ष भी कोई बंध निश्चित किया है", हास्यास्पद है।

**एक और प्रमाण** - धवल पु.१० में आयु का उत्कृष्ट द्रव्य किसके होता है यह प्ररूपणा पृ. २२५ से प्रारम्भ हुई है। इसमें बताया है कि जो जीव पूर्वकोटि की आयु वाला हो तथा पूर्वकोटि का त्रिभाग शेष रहने पर ही प्रथम अपकर्ष में (मात्र एक ही, प्रथम अपकर्ष में) उत्कृष्ट योगादि से आयु बांधता है तथा फिर जलचरों में जाकर उत्पन्न होता है और वहाँ पर्याप्तियों को अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण कर, फिर अन्तर्मुहूर्त बाद कदलीघात करता है। तथा कदलीघात ऐसे करता है कि जितनी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु व्यतीत हुई उसकी आधी यानी अर्द्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुनिषेक छोड़ कर शेष समस्त कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण आयुनिषेकों को एक समय में सदृशखण्ड पूर्वक कदलीघात से घात कर नीचे के अर्द्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण शेष स्थिति में निक्षिप्त कर देता है तथा उसी समय परभव की आयु का बंध भी उत्कृष्ट योगादि से करता है। (धवल १०/२४४) इस जीव के आयुबंध-काल के अन्तिम समय में आयु का उत्कृष्ट द्रव्य पाया जाता है (पृ. २४३ सूत्र ४६) यह उत्कृष्ट आयु द्रव्य कुछ कम दो बंधककाल प्रमाण होता है। (धवल १०/२५४)

अब यहाँ यह देखना है कि यदि जलचरों में आकर कदलीघात करने वाला जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



यदि पूर्व में दो बार आयु बंध करे (पं. मोतीचन्द की मान्यतानुसार) तो इसके पूर्व भव के तो दो बंधक काल तथा जलचर भव का एक आयुबंधक काल : इस तरह तीन आयुबन्धक काल हो जाएंगे। परन्तु धवलाकार तो स्पष्टत: प्रकृत में दो बधककाल प्रमाण ही आयु का उत्कृष्ट द्रव्य बता रहे हैं (**दो बंधगद्धामेत्तसमयपबद्धेसु सोहिदेसु आउअस्स उक्कस्स दव्वं होदि. ध. १०/२५४**) अत: कदलीघात भव से पूर्व भव में दो बार आयु बंध मानना मिथ्या है। किंच : यदि उपर्युक्त जीव पूर्व भव में दो बार आयु बन्ध करता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसने दो अपकर्षों द्वारा आयु बंध किया : क्योंकि एक ही अपकर्ष में तो हीनाधिक आयुबंध हो ही नहीं सकता। (देखो - आयुबन्ध के विशिष्ट नियम नं.११ तथा जैनगजट दि. ३.१०.६३ पृष्ठ IX सिद्धान्त शिरोमणि ब्र. रतनचन्द मुख्तार)

अत: दो अपकर्षों द्वारा उसने यदि पूर्व भव में दो बार आयुबन्ध किया है तो ऐसी स्थिति में उसके पूर्व भव में आयुबंधक काल उत्कृष्ट नहीं प्राप्त हो सकेगा क्योंकि दो अपकर्षों द्वारा आयुबंध करने वाले के दोनों बंधक कालों के योग से भी मात्र एक तथा प्रथम अपकर्ष द्वारा आयुबन्ध करने वाले का आयुबन्धकाल संख्यात गुणा पाया जाता है। (देखें धवल १० पृ. २२८ से २३३ का अल्पबहुत्व का सार) अत: दो अपकर्षों द्वारा पूर्व भव में आयु बंधाने पर "दीहाए आउअबंधगद्धाए" अर्थात् उत्कृष्ट बंधक काल द्वारा आयुबंध करने वाले के यह विशेषण निरर्थक हो जाएगा। अत: यह त्रैकालिक सत्य है कि प्रकृत जीव मात्र एक बार तथा प्रथम ही अपकर्ष से आयु बंध करके जलचरों में उत्पन्न हुआ तथा वहाँ फिर अकालमरण (कदलीघात) को भी प्राप्त हुआ है।

इस कथन से यह बात अत्यन्त मिथ्या सिद्ध हो जाती है कि कदलीघात के पूर्व वाले भव में दो बार आयु बंध होता है तथा धवला से बड़ा कोई शास्त्र संसार में हो नहीं सकता, अत: धवला का कथन ही मान्य है।

इस प्रकार यह निर्विरोध सिद्ध है कि 'अकालमरण से पूर्व भव में दो बार आयु बन्ध होवे, ऐसा नियम नहीं है।' तथा जितने वर्ष आयु जीकर अकालमरण होता है उतनी ही (जीवित प्रमाण ही) आयु का पूर्व भव में बंध होता है, यह भी मिथ्या है।

अकालमरण में तो मात्र इतनी बात है कि पूर्व में १०० वर्ष आयु बांधने वाले के, तथा वर्तमान भव में ८० वर्ष की आयु में ही विषभक्षण आदि से अकालमरण (कदलीघात) होने पर, शेष २० वर्षों की आयु की निषेक-लड़ी तत्काल युगपत् (= अन्तर्मुहूर्त में ही) खिर जाती है। यही सम्पूर्ण निषेकों का क्षणभर में अयथाकाल निर्झीर्ण हो जाना ही अकालमरण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उक्त विस्तृत प्ररूपणा से यह सिद्ध हुआ कि आयु का रहना या छीनी जाना, जीना या मरण होना मात्र आयुकर्म के अधीन है। सारतः किसी यमराज आदि द्वारा आयु छीनी जाने की मान्यता उचित सिद्ध नहीं होती।

-::-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्याख्यान - ३

# क्षायिक समकित

## सम्यग्दर्शन

तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं (त.सू.१/२) तथा इसका सूक्ष्म रस यह है कि आत्मश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। दौलत राम जी छहढ़ाला में ठीक ही कहते हैं कि पर द्रव्य से भिन्न, अपने में रुचि सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के पर्यायवाचक नाम श्रद्धा, रुचि, स्पर्श, प्रत्यय, प्रतीति : ये हैं। (श्रद्धारुचिस्पर्शप्रत्ययाश्चेति पर्यायाः) म.पुराण ९/१२३) सम्यग्दर्शन तीन प्रकार के होते हैं - उपशम, वेदक तथा क्षायिक। चार अनन्तानुबंधी सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति तथा मिथ्यात्व प्रकृति : इन ७ के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है तथा क्षयोपशम से क्षयोपशम सम्यक्त्व यानी वेदक सम्यक्त्व होता है तथा इन्हीं सातों प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

**क्षायिक सम्यक्त्व -**

**खीणे दंसण मोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होइ। तं खइयसम्मतं णिच्चं कम्मखवणहेदु।**

अर्थ - दर्शन मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मलश्रद्धान होता है उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। (पंचसंग्रह प्राकृत १/१६०) यह सम्यक्त्व (क्षायिक) नित्य (अविनाशी) होता है तथा आगे कर्मों के क्षय का कारण होता है। श्रद्धान को भ्रष्ट करने वाले वचनों से, तर्कों से, इन्द्रियों को भय उत्पन्न करने वाले रूपों से तथा बीभत्स तथा जुगुप्सित पदार्थों से भी यह चलायमान नहीं होता। क्षायिक सम्यक्त्वी जीव असम्भव या अनहोनी घटनाएँ देख कर भी विस्मय या क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। अतः यह मेरु की भांति निष्प्रकम्प, निर्मल व अक्षय अनन्त होता है। *(ल.सार १४६)*

वेदकसम्यक्त्वी ही क्षायिक सम्यक्त्वी को प्राप्त कर सकता है, उपशमसम्यक्त्वी या मिथ्यात्वी नहीं। (रा.वा.२ ।१ ।८ ।१०० ज्ञानपीठ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**स्वामित्व -**

ढाई द्वीप में स्थित १५ कर्मभूमियों में, जहाँ कि जिस काल में जिन, केवली और तीर्थंकर (यानी श्रुतकेवली, केवली) होते हैं वहाँ उस काल में मनुष्य दर्शनमोह की क्षपणा प्रारम्भ करता है। शेष द्वीपों (ढाई द्वीप से बाहर के) में स्थित जीवों के दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ नहीं होता। केवल मनुष्य पर्याय ही दर्शनमोह की क्षपणा करते हैं, तिर्यंच नहीं। (धवल ६/२४३-४५) कहा भी है -

कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ, असंयत सम्यग्दृष्टि आदि ४ गुणस्थानों में स्थित, मनुष्य पर्याय ही नियम से दर्शनमोह की क्षपणा प्रारम्भ करता है, परन्तु निष्ठापन अर्थात् समापन या पूर्णता तो किसी भी गति में जाकर कर सकता है। (जयधवल १३/प्रस्ता.पृ.९, गोजी.६४७) विद्या आदि के वश में समुद्रों में आए हुए जीवों के लवण तथा कालोदधि नामक दो समुद्रों में भी दर्शनमोह का क्षपण सम्भव है। सामान्यत: तो जीव केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में ही दर्शनमोह की क्षपणा प्रारम्भ करते हैं, परन्तु विशेष यह है कि जो उसी भव में तीर्थंकर होने वाले हैं वे तीर्थंकर केवली या श्रुतकेवली की अनुपस्थिति में भी स्वयं जिन अर्थात् श्रुतकेवली बन कर स्वयं.स्वत: दर्शनमोह की क्षपणा करते हैं।

(i) दूसरी तथा तीसरी पृथ्वी से निकले हुए तीर्थंकर सत्वी क्षयोपशम सम्यक्त्वी जीव (जैसे कृष्णादि) जब इस पृथ्वी पर मनुष्य बन कर आते हैं तब वे स्वयं दर्शनमोह की क्षपणा करते हैं, यह अभिप्राय है।

(ii) स्वर्ग से भी जो क्षयोपशम सम्यक्त्वी मनुष्य तीर्थंकर सत्वी आता है वह भी स्वयं दर्शनमोह की क्षपणा (स्वयं ही श्रुतकेवली बनने के पश्चात्) करेगा।

*(जैन गजट दि. १६.४.७० पूज्य ब्र.रतनचन्द मुख्तार सहारनपुर)*

क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर फिर कभी जीव मिथ्यात्व में नहीं जाता। इतना विशेष है कि संयमी या श्रेणि पर चढ़ा क्षायिक सम्यक्त्वी मुनि गिरकर पुन: असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भी पहुँच सकता है।

*(जयधवल १०/१२१)*

**क्षायिक समकिती के भव -**

क्षायिक सम्यक्त्व होने पर मनुष्य उसी भव से मोक्ष जा सकता है, जैसे वर्धनकुमार। तथा मनुष्य भव से देव या नारकी होकर तीसरे भव से भी मोक्ष जा सकता है, जैसे श्रेणिक। यदि क्षायिक सम्यक्त्व होने के पूर्व मनुष्यायु या तिर्यंचायु का बंध कर लिया हो तो किसी भी भोगभूमि (उत्तम मध्यम या जघन्य) में मनुष्य या तिर्यंच बनकर, फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


वहाँ से क्रमशः देव व मनुष्य बनकर मोक्ष जाता है इस तरह क्षायिक सम्यक्त्वी मनुष्य अधिक से अधिक चौथे भव में अवश्य मोक्ष चला जाता है। जैसे नाभिराय (आदिनाथ के पिता) विदेह में मनुष्य बनकर वहाँ पुनः मनुष्य आयु बंध कर, फिर क्षायिक सम्यक्त्व होकर, फिर जघन्य भोगभूमि में कुलकर बनकर, फिर स्वर्ग गए। फिर मनुष्य बन कर मोक्ष गए।

**क्षायिक सम्यक्त्व का काल—**

सादि अनन्त हैं। संसारी जीव की अपेक्षा इस सम्यक्त्व का संसार में जघन्य काल अन्तमुहूर्त तथा उत्कृष्टतः "८ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त" से कम दो पूर्वकोटि अधिक ३३ सागर है। '(स.सि.पृ.२० ज्ञानपीठ) ' इतना विशेष है कि वेदक सम्यक्त्व की अपेक्षा सम्यग्दर्शन का जघन्य काल क्षुद्रभव से कुछ कम है। (धवल ४/४०७) जो जीव अनेक बार मिथ्यात्व से सम्यक्त्व तथा सम्यक्त्व से मिथ्यात्व को प्राप्त हुए हैं उसी के यह जघन्य काल सम्भव है। सामान्य सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल ४ पूर्वकोटि अधिक ६६ सागर है। (धवल ७ पृ.१७८ स.सि.पृ.२० ज्ञानपीठ, टिप्पण) दूसरे मत के अनुसार सामान्य सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल साधिक पूर्व कोटि से अधिक ९९ सागर है। (धवल १३/१०९-१०) वेदकसम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल ६६ सागर है। उपशम सम्यक्त्व का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

*(स.सि.पृ.२० ज्ञानपीठ)*

**बद्धायुष्क क्षायिकसमकिती का जन्म -**

यों तो सम्यक्त्वी मनुष्य एक मात्र देव गति में ही जन्म लेते हैं। पूर्व में यदि नरकायु का बंध कर लिया है तो मात्र प्रथम नरक में ही जाएँगे तथा तिर्यंच या मनुष्यायु का बंध किया हो तो मात्र भोगभूमि के ही तिर्यंच मनुष्य होंगे। कोई भी सम्यक्त्वी भवनत्रिक देवों, देवियों, स्त्रियों या आभियोग्य प्रकीर्णक या किल्विषकों, विकलत्रय, स्थावर, प्रथम नरक बिना शेष ६ नरकों में, १२ मिथ्यावादों में उत्पन्न नहीं होते। क्षायिक सम्यक्त्वी सभी भोग भूमियों में जन्म लेता है।

**पहिचान -**

सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है, अतः अवधिज्ञानी मुनि इन ७ प्रकृतियों की द्रव्यकर्म सत्ता के अभाव को देखकर अनुमान ज्ञान द्वारा क्षायिकसम्यक्त्व को जान लेते हैं। कार्मणवर्गणा सूक्ष्म है, अतः वह पाँच इन्द्रियों का विषय नहीं है और न ही बाह्य में क्षायिक सम्यक्त्व का ऐसा कोइ चिह्न है जो इन्द्रियों द्वारा गृहीत हो, अतः क्षायिक सम्यक्त्व की पहिचान मतिज्ञान द्वारा नहीं हो सकती। (मुख्तार ग्रन्थ पृ.३६१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मन:पर्ययज्ञानी तथा केवली तो इसे जानते हैं ही ।

**पंचमकाल में क्षायिक समकित नहीं -**

इस काल में केवली तथा श्रुतकेवली का अभाव है अत: अभी क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हो सकता । (धवल ६/२४३) तथा बद्धायुष्क क्षायिक समकिती यहाँ उत्पन्न होगा नहीं, क्योंकि वह तो तीन भोगभूमि में ही जन्म लेगा । (लब्धिसार ११०-११) अत: यहाँ पंचम काल में किसी भी तरह से सम्यग्दृष्टि का जन्म सिद्ध नहीं होता ।

**संख्या—**

कुल क्षायिक सम्यक्त्वी असंख्यात होते हैं । मनुष्यों में क्षायिक सम्यक्त्वी संख्यात तथा देवों असंख्यात हैं । प्रथम नरक में भी क्षायिक सम्यक्त्वी असंख्यात हैं । (जयध. २/३१९) तिर्यंचों में असंख्यात क्षायिक सम्यक्त्वी हैं। (धवल ५/२६३ तथा ज.ध.२/३१९ आदि) प्रत्येक स्वर्ग तथा ग्रैवेयक में भी असंख्यात क्षायिक सम्यक्त्वी हैं ।चतुर्थ गुणस्थान के सर्व त्रिविध सम्यक्त्वी मनुष्य की संख्या ७०० करोड़ है । इतना वेशेष हैं ।

**भेद—**

क्षायिक सम्यक्त्व अभेद होता है । इसे अलग से स्पष्ट किया ही है । हाँ, वेदक सम्यक्त्व के भेद असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं । इस तरह सामान्य सम्यक्त्व की अपेक्षा सम्यग्दर्शन पूर्ण ही होता है, ऐसा कहना गलत है । (धवल १/३६८)

**क्षायिक सम्यक्त्वी संयतासंयत कौन**

क्षायिक समकिती तिर्यंच तो मात्र भोगभूमि में ही होते हैं तथा भोगभूमि में उत्पन्न जीव के अणुव्रत होते नहीं । इसलिए क्षायिकसमकिती पंचम गुणस्थान वाला तो मनुष्य ही हो सकता है । (धवल १/४०२, ध.८/३६३ सम्पादक - पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री सिद्धान्ताचार्य) कर्मभूमि का तिर्यंच क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं कर सकता । कर्मभूमि का मनुष्य ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्तकर पूर्व में तिर्यंचायु के बंधवश तिर्यंचों में जाता है । इस तरह तिर्यंचों में भी क्षायिक सम्यक्त्व भोगभूमि में बन जाता है ।

**स्त्रियों (महिलाओं) में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता -**

मानुषीणां भाववेदस्त्रीणां, न द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात् ।

अर्थ - मानुषी का अर्थ भाववेदी स्त्री है, द्रव्यवेदी स्त्री नहीं; क्योंकि द्रव्यवेदी स्त्री के क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता । प्रमाण- तत्त्वार्थवृत्ति पद पृ.३७९ ज्ञानपीठ (प्रभाचन्द्र) तत्त्वार्थवृत्ति श्रुतसागरी पृ.२० सवार्थसिद्धि पृ.१७ टिप्पण (ज्ञानपीठ),कषायपाहुडसुत पृ.६० ,गो.जी.गा.६९५-९६ (पं.रतनचन्द्र मुख्तार की टीका) पृष्ठ ७५४,जैनगजट दि.३०.९.५५ ई.तथा दि.२२.६.७० ई.मुख्तारीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


लेख, सिद्धान्त परीक्षा भाग-१ पृ.४७-४९, दि. जैन सिद्धान्त दर्पण भाग १ पृ. ४१-४३ (पं.मक्खन लाल जी शास्त्री मोरेना), दि.जै.सि.द.२/१५६ कालम-१, पृ.१६९ कालम-II, पृ.१७४ कालम१ दि.जै.सि.द.२/२३० कालम II, २/३०७ II, २/३०९ II, ३/७ कालम II वही ग्रन्थ ३/२५ कालम II, ३/६३ II, ३/१५२ II, ३/२३३ II, आदिग्रन्थ।

इन २० प्रमाणों से सिद्ध है कि महिलाओं को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता। आगे क्षायिक सम्यक्त्व सम्बन्धी दो विशिष्ट प्ररूपणाएँ पृथक् से की जाती हैं। यथा -

## क्षायिक समकिती उत्तमभोग भूमि में ही उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है

यों तो क्षायिक सम्यक्त्वी देवगति में ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु बद्धायुष्क क्षायिक सम्यक्त्वी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। इस विषय में ऐसा एकान्त नहीं है कि बद्धायुष्क क्षायिक समकित यदि भोग भूमि में उत्पन्न हो तो उत्तम भोगभूमि में ही उत्पन्न होगा। बद्धायुष्क क्षायिक सम्यक्त्वी भोगभूमि में उत्पन्न होता हुआ उत्तम मध्यम व जघन्य, सभी भोगभूमियों में उत्पन्न होता है। धवल, जयधवल, महाधवल, तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार तथा महापुराण आदि ग्रन्थ इसके साक्षी हैं। उसे ही नीचे लिखा जाता है -

(१) मारणांतिय उववाद परिणत काउलेस्सिय असंजदसम्मादिट्ठीहिं तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय / लोगस्स / संखेज्ज / दिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणोकाउलेस्साए सह असंखेज्जेसु दीवेसु पदम पुढवीए च उप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठी छुत्त खेत्तग्गहणादो।

*(धवल ४/२१४)*

**अर्थ** - मारणांतिक समुद्घात तथा उपपाद परिणत कापोत लेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि यहाँ पर असंख्यात द्वीपों में तथा प्रथम पृथ्वी में उत्पन्न होनेवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्पृष्ट क्षेत्र का ग्रहण किया है।

(२) पुव्वं तिरिक्ख मणुस्सेसु आउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय बद्धाउवसेण भोगभूमिसंढाण - असंखेज्जदीवेसु उप्पण्णेहि भवसरीरग्गहण पढमसमए वट्टमाणेहि ओरालिय-मिस्सकायजोग असंजदसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले फोसिदतिरिय लोगस्स सखेज्जदि भागुवलंभा। *(धवल ४/२६५)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**अर्थ** - पूर्व में मनुष्य तथा तिर्यंचों में आयु बांध कर, फिर सम्यक्त्व ग्रहण कर और दर्शनमोह का क्षय करके बांधी हुई आयु के वश से भोगभूमि की रचना वाले असंख्यात द्वीपों में उत्पन्न हुए, तथा भवशरीर ग्रहण के प्रथम समय में वर्तमान, ऐसे औदारिक मिश्रकाययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा अतीत काल में स्पर्श किया गया। क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

**(३) सयंपहपव्वतादो उवरिमभागो सव्वो चेव उववादपरिणद्सम्मादिट्ठीहि फुसिज्जदि...** *(धवल ४/२०९)*

**अर्थ** - स्वयंप्रभ पर्वत का उपरिम (अर्थात् पूर्व पूर्व वाला यानी भीतरी भाग पेज-२२२) सर्वभाग उपपाद परिणत असंयत समकिती तिर्यंच जीवों द्वारा स्पर्श को प्राप्त हुआ है। ...वह ३/८ राजू प्रमाण विष्कंभ (चौड़ा) और आयाम (लम्बा) वाला होता है। (वही पृष्ठ)

**(४) बद्धाअमणुसखइयसम्माइट्ठिसु तिरिक्खेसुप्पज्जमाणेसु असंखेज्जदीवेसु अच्छिय...** *(धवल स्पर्शनानुगम सूत्र १६८ की टीका)*

**अर्थ** - तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले बद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्यों द्वारा वहाँ उत्पन्न होकर असंख्यात द्वीपों में रहकर..

यदि यहाँ यह प्रश्न किया जाए कि मानुषोत्तर पर्वत से परे मनुष्य नहीं है तथा मानुषोत्तर पर्वत के बाद असंख्यात द्वीपों में भोगभूमि है तथा वहाँ कल्पवृक्ष आदि व्यवस्था है, यह कहाँ लिखा है तो इसका उत्तर यह है कि 'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः', यह सूत्र मात्र मनुष्यों की दृष्टि से है। यहाँ ऐसा नहीं कहा है कि 'प्राङ्मानुषोत्तरतिर्यश्च.' अतः मानुषोत्तर पर्वत से परे भी तिर्यंचों की सिद्धि तो हो ही जाती है। फिर वहाँ भोगभूमि है यह बात **"परदो संयंपहोत्ति य जहण्ण भोगावणितिरिया"**, इस त्रिलोकसार (गाथा ३२३) के कथन से सिद्ध है। इस गद्यांश का अर्थ यह है कि मानुषोत्तर पर्वत से आगे स्वयंप्रभपर्वतपर्यन्त जघन्य भोगभूमिया तिर्यंच रहते हैं। और भोगभूमि में जलचर जीव नहीं होते और आदि के दो समुद्र तथा अन्तिम स्वयं भूरमण के सिवाय शेष सब मध्यवर्ती समुद्र भोगभूमि संबंधी है, अतः उनमें जलचर जीव नहीं पाए जाते। *(त्रि.सा. ३२०)*।

इस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग में जो असंख्यात द्वीप हैं उनमें चूँकि जघन्य भोग-भूमि है अतः वहाँ असंख्यात तिर्यंच हैं। ये सभी गर्भज, भद्र, शुभ परिणामी हैं। युगलिया ही जन्म लेते हैं। पल्य की आयु होती है तथा कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोग भोगते हैं। मरकर स्वर्ग ही जाते हैं और मिथ्यात्वी तिर्यंच मर कर भवनत्रिक बनते हैं। इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


असंख्यात द्वीपों की जघन्य भोग - भूमिरूप धरा पर कृमि कुन्थु एवं मच्छर आदि तुच्छ जन्तु, क्रूर परिणामी जीव एवं विकलेन्द्रिय कभी नहीं उत्पन्न होते । मूल वाक्य इस प्रकार है :-

तेषु द्वीपेष्वसंख्येयेषु जघन्या भोगभूमयः ।
सम्बन्धिन्यश्चिरश्चां स्युः केवलं संख्यदूरगाः ॥ ३९६
आसु सर्वासु तिर्यंचो गर्भजा भद्रका शुभाः ।
युग्मरूपाश्च जायन्ते पंचाक्षाः क्रूरतातिगाः ॥
एकपल्योपमायुष्का मृगादिशुभजातिजाः ।
कल्पद्रुमसमुत्पन्न - भोगिनो वैरवर्जिताः ॥
मन्दकषायिणोऽप्येते मृत्वा यान्ति सुरालयम् ।
ज्योतिर्भावनभौमेसु न स्वर्गं दर्शनं विना ।
न सन्त्यासु समस्तासु धरासु जन्तवः क्वचित् ।
कृमिकुन्थ्वादिदंशाद्याः क्रूरा वा विकलेन्द्रियाः ॥ ४०९

*(सिद्धान्तसार दीपक)*

इस प्रकार असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमि तथा सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी तिर्यंचों का अस्तित्व वहाँ स्पष्ट सिद्ध है । *(द्रष्टव्य-रत्नकरण्ड श्रा.श्लोक.११७ सदासुखजी की टीका)*

(५) एदे चउदसमणु ओ, पडिसुदपहुदि हु णाहिरायंता ।
पुव्वभवम्हि विदेहे, रायकुमारा महाकुले जादा ॥
कुसला दाणादीसु, संजमतवणाणवंत पत्ताणं ।
णिय जोग्ग अणुट्ठाणां, मद्दव मज्जवगुणेहिसंजुत्ता ॥
मिच्छत्त भावणाएं भोगाऊं बंधिऊण ते सव्वे ।
पच्छा खाइय सम्मत्तं गेण्हंति जिणिंद चरणमूलम्हि ॥
णिय जोग्गसुदं पड्दिा, खीणे भउम्मि, ओहिणाणजुदा ।
उप्पज्जिदूण भोगे, केइ णरा ओहिणाणेण ॥
जादिभरेण केई भोगमणुस्साण जीवणोवायं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


भासंति जेण तेणं मणुणो भणिदा मुणींदेहिं ॥

*(तिलोयपण्णत्ति ४/५११-५१५)*

**अर्थ** - प्रतिश्रुती आदि नाभिराय (आदिनाथ के पिता) पर्यन्त ये १४ ही मनु पूर्वभव में विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत महाकुल में राजकुमार थे। संयम तप तथा ज्ञान से युक्त पात्रों को दानादि देने में कुशल, स्वयोग्य अनुष्ठान से युक्त तथा मार्दव, आर्जव आदि गुणों से सम्पन्न वे सब पूर्व में मिथ्यात्व भावना से भोगभूमि की आयु बांध कर पश्चात् जिनेन्द्र के पादमूल में क्षायिकसम्यक्त्व ग्रहण करते हैं। अपने योग्य श्रुत को पढ़कर आयु के क्षीण हो जाने पर भोगभूमि में अवधिज्ञान सहित मनुष्य उत्पन्न होकर इन १४ में से कितने ही तो अवधिज्ञान से तथा कितने ही जातिस्मरण से भोग भूमिज मनुष्यों को जीवनोपाय बताते हैं इसलिए ये मुनीन्द्रों द्वारा "मनु" कहे गए हैं। ये सब कुलकर तीसरे काल (जघन्य भोग भूमि) में उत्पन्न हुए थे। *(ति.प. ४/४२८ पलिदोवमट्ठमंसे...)*

इससे स्पष्ट है कि सभी क्षायिक सम्यक्त्वी मनु (कुलकर) जघन्य भोग भूमि में उत्पन्न हुए।

(६) यही कथन तिलोयपण्णत्ति से त्रिलोकसार गा. ७९४ में नेमिचन्द्र सि. चक्रवर्ती ने किया है।

(७) यही कथन तिलोयपणत्ति से आदिपुराण में पूज्य जिनसेनस्वामी ने भी किया है। *(आ.पु.पर्व ३ श्लोक २०७ से २१२ पृ.९२-९३ शास्त्राकार)*

(८) त्रिलोकसार की माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवकृत टीका में भी इसी का समर्थन है कि क्षायिक समकित कुलकर तीसरे काल की जघन्य भोगभूमि में उत्पन्न हुए।

(९) तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु एक्कवीसविह. केवडिय। जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो, उक्कस्सेण तिण्णि पालिदोवमाणि। *(जयधवला पु.२/२६०)*

**अर्थ** - तियांचगति में तिर्यंचों में २१ मोह प्रकृति के सत्व वालों का एक जीव की अपेक्षा कितना काल है ? जघन्य से पल्य का असंख्यातवाँ भाग तथा उत्कृष्टतः ३ पल्य।

**विशेष -**

यहाँ क्षायिक सम्यक्त्वी तिर्यंचों का जघन्य काल भोगभूमि में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण (जघन्यतः) बताया है। इसी कथन से यह हस्तामलकवत् स्पष्ट सिद्ध है कि क्षायिक समकित मनुष्य तिर्यंचों में जन्म लेता हुआ जघन्य भोग भूमि में भी जन्म लेता है। क्योंकि जघन्य भोगभूमि में ही १ समयाधिक पूर्व कोटि से प्रारम्भ करके पूरे एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पल्य आयु तक के विकल्प बनते हैं। (ति.प.५/२९० समय-जुद-पुव्व-कोडी...) मध्यम भोगभूमि में समयाधिक पल्य से लेकर २ पल्य तक की आयु होती है। उत्तम भोगभूमि में जघन्य आयु भी १ समय अधिक दोपल्य तथा उत्कृष्ट आयु ३पल्य होती है।

*(ति.प.५/२९१-९२) पृ. १६८ भाग ३ महासभा प्रकाशन)*

अतः उक्त क्षायिक सम्यक्त्वी तिर्यंच की जो जघन्य आयु पल्य के असंख्यातवें भाग कही है वह निश्चित रूप से क्षायिक सम्यक्त्वी की जघन्य भोगभूमि में भी उत्पत्ति सिद्ध करती है।

(१०) बड़तल्लायादगार, सहारनपुर (उ.प्र.) के मन्दिर जी में स्थित पूज्य ब्र. रतनचन्द मुख्तार की निजी जयधवल प्रतियों में पु.३ पृ.१०१ पु. १३ पृ.४ तथा २/२२५ आदि में "उत्तम भोगभूमि में बद्धायुष्क क्षायिक सम्यक्त्वी की उत्पत्ति होती है", इस विशेषार्थगत वाक्य में से "उत्तम" शब्द मुख्तार सा. द्वारा काट दिया गया है।

(११) गुरुवर्य सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री (प्रवास काशी) स्वयं लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि को छोड़ कर हमने दिगम्बर तथा श्वे. सम्प्रदाय में प्रचलित कार्मिक (कर्म सिद्धान्त) ग्रन्थ देखे, पर वहाँ हमें यह कहीं लिखा हुआ नहीं मिला कि क्षायिक सम्यक्त्वी अगर मरकर मनुष्य या तिर्यंच होता है तो उत्तम भोगभूमिया ही होता है। वहाँ तो केवल इतना ही लिखा मिलता है कि ऐसा जीव यदि मर कर तिर्यंच या मनुष्य हो तो असंख्यातवर्षायुष्क भोग भूमिया ही होता है। *(जयधवल २/२६१, सन् १९४८)*

ठीक ३८ वर्ष बाद *पूज्य गु. सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री* (प्रवास-हस्तिनापुर) मुझे एक पत्र के उत्तर में लिखते हैं - सर्वार्थसिद्धि में पृ.१७ (ज्ञानपीठ) के विवाद के स्थल को मूल से हटा कर टिप्पण में ले लिया है। यह विवादस्थ पाठ मूल में अन्य सर्वार्थसिद्धि-प्रतियों में नहीं है, अतः बहुभाग प्रमाण प्रतियों को प्रमाण मान कर मुद्रित प्रति (दूसरा तथा तीसरा संस्करण सर्वार्थसिद्धि ज्ञान-पीठ प्रकाशन) में से विवादस्थपाठ निकाल दिया है। इस प्रकार श्री जयधवल जी की बात (पु.२ पृ.२६०) का समर्थन सर्वार्थसिद्धि से भी हो जाता है। अर्थात् सर्वार्थसिद्धि भी यह नहीं कहती कि बद्धायुष्क क्षायिक समकिती उत्तम भोगभूमि में ही उत्पन्न होता है।

*(पत्र दि.१/१०/८६)*

*पूज्य पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री* (प्रवास रुड़की उ.प्र.)पुनः मुझे एक प्रश्न के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उत्तर में लिखते हैं कि सर्वार्थ सिद्धि की कई हस्तलिखित प्रतियों में वह पाठ नहीं पाया जाता जहाँ यह लिखा है कि बद्धायुष्क क्षायिक सम्यक्त्वी मनुष्य उत्तम भोग भूमि में जाता है अत एव हमने दूसरे तथा तीसरे संस्करण में उस पाठ को निकाल दिया है तथा उसे टिप्पण में दि दिया है। हमने जयधवला जी में जो विशेषार्थ लिखा था (ज.ध.२/२६१) वह सर्वार्थसिद्धि के संपादन से पूर्व लिखा था अतः "सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर" ऐसा हमने ज.ध. २/२६१ में लिखा।

*(पत्र दि. १२.२.८७)*

(१२ से १५) गोम्मट सार कर्मकाण्ड की सभी (संस्कृत, कन्नड़, टोडरमल्लीय तथा मुख्तारी) टीकाओं में लिखा है कि क्षायिक सम्यक्त्वी सभी भोग भूमियों में उत्पन्न होता है। यथा- कर्मभूमि का वेदक सम्यक्त्वी (तिर्यंच) या मनुष्य या क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य जिसने पहले तिर्यंचायु का बंध किया है, ३ प्रकार के पात्रों को दान देकर या उनकी अनुमोदना करके, तीन भोगभूमियों में १, २, ३ पल्य की आयु धारण करके कपोत लेश्या के जघन्य अंश के साथ उत्पन्न हुआ। उस अपर्याप्त वेदक सम्यक्त्वी कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वी या क्षायिक सम्यक्त्वी के देवगति सहित २८ का ही स्थान बंधता है।

*(पृ.८६६ ज्ञानपीठ प्रकाशन, तथा मूल में भी यही सब है। मुख्तारी टीका पृ.५४३)*

स्मरण रहे कि अपर्याप्त दशा में कापोत लेश्या का जघन्य अंश मात्र सम्यक्त्वी के ही होता है मनुष्य तिर्यंचों में (*तिलोयपण्णत्ति ४/४२१-४२६ तथा कर्मकाण्ड पृ. ५२१ ज्ञानपीठ*) तथा अपर्याप्त दशा में जो देवगति सहित २८ के स्थान का बन्ध करता है वह नियम से सम्यग्दृष्टि ही होता है। (द्रष्टव्य कर्मकाण्ड *ज्ञानपीठ पृ.१११, ८५४, ८३९, ८३८, १०८१, १०६२, ८५, १०२, ६१२ पंचसंग्रह पृ. २३२ (ज्ञानपीठ) आदि*) तथा मिथ्यात्वी व सासादन का कथन पूर्व में हो चुका, अतः यहाँ मात्र अपर्याप्तावस्थागत सम्यक्त्वी का ही कथन है, ऐसा जानना चाहिए।

(१६) निम्न स्थलों पर बद्धायुष्क क्षायिक समकिती की उत्पत्ति भोगभूमि में ही बताई है, "उत्तम भोग भूमि" में नहीं :-

१. कर्मकाण्ड पृ. ८७७ ज्ञानपीठ

२. कर्मकाण्ड पृ. ८८८ ज्ञानपीठ

३. जीवकाण्ड पृ. ७०८ *पूज्य ब्र. रतनचन्द मुख्तार कृतटीका*

४. जयधवल १३/१० सम्पादक - *पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री*

५. धवल २/४८३ सम्पादक - *पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



६. धवल ४/२०९ सम्पादक - पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री

७. लब्धिसार ११०-११

८. पं. रतनचन्द्रमुख्तार व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ. ३६६

९. बृहद्द्रव्यसंग्रह ४९ टीका चरम पैरा

१० .श्रीपालसुत उड्डविराचित पंचसंग्रह/जीवसमास/श्लोक २२९ पृ.६७२

(१७) यदि यह कहा जाए कि सम्यग्दृष्टि तो जहाँ-२ जन्म लेता है वहाँ-२ के उत्कृष्ट में जन्म लेता है तथा उत्कृष्ट आयु ही पाता है। तो उत्तर यह है कि ऐसा भी नहीं है। यदि ऐसा ही माना जाए तो सभी सम्यक्त्वी अच्युत (सोलहवें) स्वर्ग में ही जाते हैं, ऐसा मानना पड़ेगा। क्योंकि स्वर्गों में उत्कृष्ट स्वर्ग तो सोलहवाँ है, परन्तु ऐसा तो है नहीं। सम्यक्त्वी, क्षायिक सम्यक्त्वी आदि सौधर्म नामक पहले स्वर्ग में भी जाते हैं। (गो.जी.गा.६५७, धवल ३/६९, ३/४७४, गो.क.पृ.८७१ (ज्ञानपीठ) आदि) तथा वहाँ भी उत्कृष्ट आयु ही पाते हों, ऐसा भी नहीं है। वे सौधर्म स्वर्ग में जन्म लेते हुए न्यून आयु भी प्राप्त करते हैं। कहा भी है - **सोहम्मे समुप्पज्जमाण सम्मादिट्ठीणं दिवड्ढ पलिदोवमादो हेट्ठा जहण्णाउआभावादो**। *(जयधवल ६/२७५ महाधवल २/२४९)*

**अर्थ** - सौधर्म में उत्पन्न होने वाले सम्यक्त्वी देवों की जघन्य आयु १-१/२ डेढ़ पल्य होती है, इससे कम नहीं। इस प्रकार निम्न स्वर्ग में, लगभग जघन्य आयु पाकर भी सम्यक्त्वी उत्पन्न होते हुए पाए जाते हैं। तथैव इस आर्यखण्ड की भोगभूमि में चौदहवें कुलकर क्षायिक सम्यक्त्वी नाभिराय की आयु १ पूर्वकोटि (अर्थात् समयाधिक पूर्वकोटि) प्रमाण ही हुई थीं, यानी उन्हें जघन्य भोगभूमि की जघन्य आयु ही प्राप्त हुई थी। *(ति.प.५/२९० भाग ३ पृ.१६८ महासभा प्रकाशन पूज्य १०५ परम विदुषी आर्यिकारत्न विशुद्धमति जी (तथा ति.प. भाग २ पृ.१४६ का नक्शा) हाँ;* जघन्य भोगभूमि में उत्पन्न होते हुए भी तथा जघन्य आयु पाते हुए भी वे कुलकर अर्थात् महाप्रभावी राजा समान थे (हरिवंश पुराण ७/१७६, ७/१७४) यही इनकी उत्कृष्टता थी। इसी तरह देवों में उत्पन्न होते हुए वे इन्द्र या सामातिक ही नहीं होते, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष लोकपाल तथा अनीक भी होते हैं। मात्र सम्यग्दृष्टि जीव प्रकीर्णक आभियोग्य तथा किल्विषक नहीं होते, यही इनकी उत्कृष्टता है। *(धवल ३/३३९)* इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति सभी भोगभूमियों में, सभी आयुओं के साथ स्वीकार करनी चाहिए।

इन सब के बावजूद प्रभाचन्द्र आचार्य *(११वीं शती)* ने "कर्मभूमिजो मनुष्य एव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**दर्शनमोहक्षयण - प्रारम्भको भवति। क्षपणप्रारम्भ कालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्को उत्कृष्ट भोगभूमिजपुरुष तिर्यंक्षु एव उत्पद्यते, न तिर्यंक्स्त्रीषु।"** यह कह कर बद्धायुष्क जीवों की उत्कृष्ट भोग भूमिज पुरुषों में ही उत्पत्ति बताई। सो यहाँ जो उत्कृष्ट आया पद आया है वह भोग भूमिपद का विशेषण न होकर "पुरुष" पद का विशेषण है, ऐसा समझना चाहिए। अथवा, यह प्रभाचन्द्रीय कथन मान्यता भेद से सम्बन्ध रखता हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

## क्षायिक समकित सब दिन एक समान

लब्धिसार क्षपणासार गा.१६६ में लिखा है कि सात प्रकृति के क्षय से जघन्य क्षायिक लब्धि होती है ("न कि जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व") तथा ४७ प्रकृतियों के क्षय से उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि (न कि उत्कृष्ट क्षायिक सम्यक्त्व) होती है। ऐसा कहा है -

**सत्तण्हं पयडीणं खयादु अवरं तु खइयलद्धी दु। उक्कस्स खइयलद्धी घाइचउक्कखएण हवे॥ १६६॥**

इस गाथा में कहीं आचार्य ने ऐसा नहीं कहा है कि सात प्रकृतियों के क्षय से जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व होता है तथा ४७ प्रकृति क्षय से उत्कृष्ट क्षायिक सम्यक्त्व। यहाँ क्षायिक सम्यक्त्व का प्रकरण न होकर मात्र क्षायिक लब्धिसामान्य का प्रकरण है। पाठक इसी बात को नहीं पकड़ पाने के कारण इसे मात्र क्षायिक सम्यक्त्व पर ही घटित कर लेते हैं। तथा फिर क्षायिक सम्यक्त्व के भी जघन्य व उत्कृष्ट भेदों की कल्पना करते हैं। जो अनुचित है। क्योंकि **"क्षायिक भावानां न हानिः नापि वृद्धिरिति"** *(श्लोकवार्तिक अ.१ सूत्र १ श्लोक ४४-४५ टीका)* अर्थात् क्षायिक भावों की वृद्धि और हानि नहीं होती। और क्षायिक भाव विवक्षित कर्म के क्षय से होता है। अकलंकदेव ने कहा है कि **"आत्मनो हि कर्मणोत्यन्तविनिवृत्तौ विशुद्धिरात्यन्तिकी क्षय इत्युच्यते।"** *(राजवार्तिक २।१।२ ज्ञानपीठ प्रकाशन)* अर्थात् आत्मा से कर्मों के सम्पूर्णतः चले जाने पर आत्यन्तिकी (= स्थायी एवं सम्पूर्ण) विशुद्धि होती है वह "क्षय" ऐसी कही जाती है। अतः "क्षायिक सम्यक्त्व के चौथे में जघन्यता है तथा ऊपर-२ क्रमशः वृद्धि (वर्धमानता)" ऐसा नहीं होता। कहा भी है - चौथे गुणस्थान के क्षायिक सम्यग्दर्शन और तेरहवें गुणस्थान के सम्यग्दर्शन में क्षायिक भाव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है। *(पं. रतनचन्द मुख्तार व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ.३६८ चरम पंक्ति)* ऐसी स्थिति में उक्त गाथा का अर्थ ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



समझना चाहिए :- सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं सम्मत्तं होदि सा चेव अवरं खइयलद्दी। घाइचउक्कखएण केवलणाणं हवे, तं केवलणाणं चेव उक्कस्सखइयलद्दी।

इसी सब बात को लब्धिसारकार ने अपने ग्रन्थ त्रिलोकसार में कही है - टीकाकार ने उसे स्पष्ट इस तरह किया है ....

केवलज्ञानस्य अविभागप्रतिच्छेदाः। एतावदेवः द्विरूपवर्गधाराण - मन्तम्। इदमेव प्रमाणज्येष्ठम्। एतदेव उत्कृष्टं क्षायिकलब्धिनाम।

अर्थ ... केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। यही द्विरूपवर्गधारा का अन्तिम स्थान है। यही उत्कृष्ट प्रमाण है और इसी का नाम उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि है।

नोट :- यहाँ स्पष्टतः केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों को उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि कहा है, न कि तेरहवें गुणस्थान के क्षायिक सम्यक्त्व को । *(त्रिलोकसार गा.७२ टीका)*

अब रह जाती है मात्र बात त्रिलोक सार गा.७१ की टीका की। वहाँ इस प्रकार लिखाः-

ततोऽनंतस्थानानि गत्वा तिर्यग्गत्यसंयतसम्यग्दृष्टौ जघन्यक्षायिकसम्यक्त्वरूपलब्धेः अविभागप्रतिच्छेदाः, ततोऽनंतस्थानानि गत्वा वर्गशलाका, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदाः, ततोऽनंतस्थानानि गत्वा अष्टममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सप्तममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते षष्ठमूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पंचममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते चतुर्थमूलं, तस्मिंन्नेकवारं वर्गिते तृतीयमूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते द्वितीयमूलं तस्मिन्नैकवारं वर्गिते प्रथममूलं चोत्पद्यते।(गाथा ७१) एकवारं तस्यादिमूलस्य वर्गे गृहीते केवलज्ञानस्य अविभागप्रतिच्छेदाः। ...एतदेव उत्कृष्टं क्षायिकलब्धिनाम (...गा.७२)

अर्थ - जघन्यलब्ध्यक्षरश्रुतज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों से अनन्त स्थान आगे जाकर तिर्यंच गति में असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के जघन्य क्षायिकसम्यक्त्व लब्धि के अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण की प्राप्ति होती है। उससे अनंत स्थान आगे जाकर केवल ज्ञान की वर्गशलाकाओं का प्रमाण प्राप्त होता है। उससे अनंत स्थान आगे जाकर केवलज्ञान के अर्द्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है। उससे अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान का अष्टम मूल प्राप्त होता है। फिर आगे के निरन्तर वर्गस्थान केवलज्ञान से सप्तम, षष्ठ, पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय व प्रथम वर्ग मूल रूप यथाक्रम हैं। फिर अन्तिम वर्गस्थान है केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदस्वरूप यही उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि है।

नोट - यहाँ देखना यह है कि गोम्मटसार जीवकाण्ड की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक कन्नड़ टीका तथा भट्टारक नेमिचन्द्र कृत संस्कृत जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका, इन दोनों टीकाओं का पर्याप्तिप्ररूपणा के पूर्व का स्थल (गा.११८ की पीठिकारूप) त्रिलोकसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(व.ति.य.) के आधार से ही लिखा गया है। उसमें ऊपर वाला अल्पबहुत्व हुबहू (कुछ भाषान्तर के साथ) है। परन्तु केशववर्णी तथा भ. नेमिचन्द्र ने "जघन्यक्षायिकलब्धि अविभाग प्रतिच्छेद कलापराशि:" ही शब्द दिया है।

*(द्रष्टव्य - गो.जी.१/२१८ ज्ञानपीठ)*

इसमें "तिर्यंगगत्यसंम्यग्दृष्टौ" तथा "सम्यक्त्व" विशेषण नहीं जोड़े। इन दोनों की बात मूल त्रिलोकसार अवरा खइयलद्दी... गा.७१ की अनुसारिणी है, अत: वही ग्राह्य है। क्योंकि त्रि.सा. गा.७१ मूल, लब्धिसार १६६ (अवरं तु खइयलद्दी....) राजवार्तिककार आत्यन्तिकी (सम्पूर्णा) विशुद्धि: क्षय: इत्युच्यते रा.वा.२/९/२, श्लोकवार्तिककार (१/१ श्लोक ४४-४५ क्षायिक भावानां न हानि: नापि वृद्धि) आदि के भावों के अनुकूल ही जीवतत्त्वप्रदीपिका का वह वाक्य है। इधर त्रिलोकसारीय संस्कृत टीका का वह वाक्य उक्त सभी में से किसी से भी समर्थित नहीं होता अत: अवश्य ही यह वाक्य "तिर्यग् गत्यसम्यग्दृष्टौ" तथा "सम्यक्त्वरूप" बाद में लिपिकारों की भूलवश प्रक्षिप्त हुआ होना चाहिए।

त्रिलोकसार की संस्कृत टीका तो गाथा ६८ में भी त्रुटित हुई है।

वहाँ भी "अत्र वर्गशलाकादीनामनुत्पत्ति:.......बिरलनदेयरूपेणोत्पन्नत्वात्" यह टीका वाक्य गलत है। क्योंकि सूच्यंगुल के अर्द्धच्छेद भी द्विरूपवर्गधारा में उत्पन्न होते हैं (धवल १४/३७४-७५) तथा उसके प्रथमादि वर्गमूल भी। मात्र उसकी वर्गशलाका उत्पन्न नहीं होगी। अत: गा.६८ की टीका में जो सूच्यंगुल को "उप्पज्जदि जो राशि ....." का उदाहरण स्वरूप लिखा है, वह गलत है। गा.७३ तो समान विरलन व समान देय क्रम से समुत्पन्न राशि (आवली आदि संख्या) के लिए ही लगता है। सूच्यंगुल समान विरलन समान देय क्रम से उत्पन्न नहीं है।

इस तरह त्रि. सा. की गा. ७१की टीका का वाक्य तिर्यग्गत्यसंयतसम्यग्दृष्टौ जघन्यक्षायिकसम्यक्त्वरूपलब्धे:, ठीक नहीं प्रतीत होता।

यहाँ 'तिर्यग्गति' शब्द भी सार्थक नहीं लगता, क्योंकि तिर्यंचों में तो कोई क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता नहीं (ल.सा.११०), फिर जो मनुष्य दर्शनमोह की क्षपणाकर तिर्यंचों में जाएँगे, क्या उनके वह क्षायिक सम्यक्त्व कम पड़ जाएगा क्या, और देवगति में जाने पर बढ़ जाएगा क्या। जिससे कि "तिर्यग्गति" शब्द आया है। *ब्र. रतनचन्द मुख्तार* ने कहा भी है कि :-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



"यद्यपि सम्यक्त्व आदि सात प्रकृतियों के क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व पूर्ण हो जाता है फिर भी वह अवगाढ़ व परमावगाढ़ संज्ञा को प्राप्त नहीं होता। पूर्ण श्रुतज्ञान होने पर उसी क्षायिक सम्यग्दर्शन की अवगाढ़ संज्ञा हो जाती है और केवल ज्ञान होने पर परभावगाढ़ संज्ञा हो जाती है। ... क्या क्षायिक व अवगाढ़ सम्यग्दर्शन अपूर्ण है और परभावगाढ़ सम्यक्त्व पूर्ण है। क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन, अवगाढ़ सम्यग्दर्शन और परभावगाढ़ सम्यग्दर्शन के अविभाग प्रतिच्छेदों में तरतमता है। सम्यग्दर्शन में तरतमता उत्पन्न करनेवाला दर्शनमोह कर्म नष्ट हो जाने पर क्षायिक सम्यग्दर्शन के अविभाग-प्रतिच्छेदों में तरतमपने का अभाव हो जाता है। इसी प्रकार चारित्र मोह कर्म के अभाव हो जाने पर क्षायिक चारित्र के अविभागप्रतिच्छेदों में भी तरतमता का अभाव हो जाता है। जिस प्रकार क्षायिक सम्यग्दर्शन, ज्ञान की अपेक्षा अवगाढ़ व परभावगाढ़ संज्ञा को प्राप्त होते हैं उसी तरह क्षायिक चारित्र भी अयोगी की अपेक्षा परमयथाख्यात संज्ञा को प्राप्त होता है। क्षायिक चारित्र तथा परमयथाख्यात चारित्र के अविभाग प्रतिच्छेदों में हीनाधिकता नहीं है। तेरहवें गुणस्थान के केवलज्ञान (क्षायिक ज्ञान) और चौदहवें गुणस्थान के केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों में भी कोई अन्तर नहीं है। श्री विधानन्द स्वामी ने कहा है— "सयोगकेवलिरत्नत्रयमयोग केवलिचरमसमपर्यन्तमेकमेव" अर्थात् तेरहवें गुणस्थान का रत्नत्रय और १४ वें गुणस्थान का अन्तिमसमय का रत्नत्रय एक ही है - उनमें अन्तर नहीं है।

**क्षायिको हि भावः सकलस्वप्रतिबन्धक्षयादाविर्भूतो नात्मलाभे किंचिदपेक्षते, येन तदभावे तस्य हानिः तत्प्रकर्षे च वृद्धिरिति।** (श्लोकवार्तिक १/१/४४-४५) क्षायिक भाव (चाहे कोई भी क्षायिक भाव हो) समस्त स्वप्रतिबन्धक कर्मों के क्षय से उत्पन्न होता है। वह आत्मलाभ में फिर किसी कि आवश्यकता नहीं रखता, जिससे कि उसके बिना तो उस क्षायिक भाव में कुछ कमी आ जाए तथा उसके होने पर बढ़ोत्तरी।"

*जैनगजट दि. ३०.१.६७ पृष्ठ ९*

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होने के बाद सब दिन सब गुणस्थानों में तथा सर्वत्र एक समान ही रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सार- क्षायिक भावों में से एक भाव से दूसरे भाव की तुलना करते हुए ही (लब्धिसार १६६ व त्रि.सा.७१ में) कहा गया है कि क्षायिक सम्यक्त्व रूप क्षायिक-लब्धि के जीवाविभाग प्रतिच्छेदों से क्षायिक ज्ञान (केवलज्ञान) रूप क्षायिक लब्धि अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेदों युक्त है। इनमें क्षायिक सम्यक्त्वरूप लब्धिं जघन्य क्षायिक लब्धि कहलाती है तथा क्षायिक ज्ञान (केवलज्ञान) रूप क्षायिक लब्धि उत्कृष्ट।

-::-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्यान-४

# मेरी कतिपय शंकाएँ/गुरुवर्य श्री पं. फूलचन्द्र जी के समाधान

(१) **शंका** - अनुजीवी तथा प्रतिजीवी गुण, ऐसे गुणों के दो भेद मात्र राजमल जी आदि पण्डितों के द्वारा किए हुए हैं। मूल आचार्य प्रणीत ग्रन्थों में इनका (इन भेदों का) दर्शन नहीं होता, अतः कृपया आप अपना मार्गदर्शन देवें।

**समाधान** - प्राचीन ग्रन्थों में यद्यपि अनुजीवी गुण तथा प्रतिजीवी गुण ऐसा भेद दृष्टिगोचर नहीं हुआ है : परन्तु कर्मों का घातिया कर्म तथा अघातिया कर्म यह भेद इस बात का सूचक तो है ही, कि गुण दो प्रकार के होने चाहिए। श्री धवल प्रथम पुस्तक पृ. ४७-४८ से भी इसकी सूचना मिलती है। इसलिए श्री पं. राजमल जी ने गुणों के जो दो भेद स्वीकार किए हैं वे अकारण नहीं है। हम समझते हैं कि इससे आपका समाधान हो जाएगा। फिर भी आपके मन में कोई विकल्प हो तो अवश्य लिखना।

*(वाराणसी दि. ३०-१०-७९)*

(२) **शंका** - किसी भी मूल दि. जैन शास्त्र का हार्द यह नहीं है कि चौथे गुणस्थान में निरन्तर गुणश्रेणिनिर्जरा होती ही रहती है। सिद्धान्तशास्त्रों में तो मात्र इतना लिखा है कि असंयत सम्यग्दृष्टि के गुणश्रेणी-निर्जरा मात्र उपशमसम्यक्त्व प्राप्ति, दर्शनमोह उपशामना, क्षपणा तथा अनन्तानुबंधी विसंयोजना के काल में मात्र अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणश्रेणि निर्जरा होती हैं, अन्य कालों में नहीं। कृपया आप समाधान देकर आगम का हार्द सम्प्रकट करावें।

**समाधान** - आपका कथन ठीक ही है सम्यक्त्वी के उपशम, क्षायिक या अनन्तानुबंधी की विसंयोजना के समय अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणश्रेणि निर्जरा होती है। अन्य काल में नहीं।

*(वाराणसी दि. २०-१-८०)*

नोट - इस प्रकरण में वे १४ शंका-समाधान दिए गए हैं जो कि मैंने पत्राचार द्वारा प्राप्त किए थे। इनमें भी जटिल शंका समाधान छोड़ दिए गए हैं।.सुगम/सर्वजनोपयोगी शंका समाधानों को ही यहाँ लिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(३) **शंका** - षट्प्राभृत में वर्णी श्री श्रुतसागर जी का यह संस्कृत अर्थ समुचित नहीं है कि अविरत सम्यक्त्वी को संख्यात गुणश्रेणि निर्जरा होती है। क्योंकि किसी भी प्राचीन या मौलिक गन्थ से या उसी मूलगाथा से उसका समर्थन नहीं होता। गुणश्रेणि निर्जरा तो असंख्यात गुणश्रेणि निर्जरा ही होती है। हाँ, उसमें ऊपर से प्रक्षिप्यमान द्रव्य असंख्यातगुणाहीन, संख्यातगुणाहीन आदि रूप चतु:स्थान पतित हो सकता है। आप इस पर चिन्तन कर अपना मार्गदर्शन प्रदान कराने का अनुग्रह करावें।

**समाधान** - षट्प्राभृत में जो पं. जयचन्द जी ने या संस्कृत टीकाकार ने (या इसका पुनः अनुकरण करने वाले अन्य विद्वानों ने) मूलगाथा का खुलासा किया है, पर मैंने ऐसा कहीं नहीं पढ़ा कि अविरत सम्यग्दृष्टि के संख्यातगुणी निर्जरा होती ही रहती है। अत: मेरे ख्याल से आगम के इस वचन को सामान्य कथन जानना चाहिए।

*(वाराणसी, २०-१-८०)*

(४) **शंका** - यह कथन आगम का, यह अनागम का, ऐसा निर्णय किस आधार बिन्दु को लेकर किया जाना चाहिए।

**समाधान** - आगम के निर्णय करने की कसौटी यह है कि किसी भी रचना की प्रमाणता पूर्वकालीन रचना के आधार पर होती है। इस प्रकार पूर्व-पूर्व की प्रमाणता के आधार पर किसी विषय के निर्णय तक पहुँचा जाता है। तभी कोई कथ्य सर्वज्ञ-कथित माना जा सकता है।

*(वाराणसी, २९-१०-८०)*

(५) **शंका** - बाहुबली की कमण्डलु पिच्छी मूर्तियों के साथ नहीं दर्शाई है। जबकि ये बेल सहित मूर्तियां तो मुनि अवस्था की ही है। क्या उनके कमण्डलु-पिच्छी नहीं थे। कमण्डलु पिच्छी किनके, किस अवस्था में छूटते हैं, स्पष्ट करावें।

**समाधान** - केवलज्ञान होने पर तो कमण्डलु-पिच्छी स्वयं छूट जाते हैं। छूट तो ध्यान की अवस्था में ही जाते हैं, परन्तु केवल ज्ञान होने पर वे सर्वदा के लिए छूट जाते हैं। इसका कारण यह है कि जिस प्रयोजन से कमण्डलु-पिच्छी तथा शास्त्र के स्वीकार करने की अनुज्ञा होती है, वह प्रयोजन नहीं रहने से केवलज्ञान होने पर उनकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

*(वाराणसी, १६-११-८०)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(६) **शंका** - क्या अस्तित्व आदिगुण सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि दोनों के शुद्ध ही होते हैं। कैसे मिथ्यादृष्टि के अनन्त गुणों का अनन्तवाँ भाग शुद्ध होता है वह किस अपेक्षा से कहते हैं। इस विषय में यदि कोई आगम-प्रमाण हो तो भी दिलाने का अनुग्रह होवे।

**समाधान** - जीव के जो अस्तित्व आदि सामान्य गुण होते हैं वे निरावरण ही होते हैं, चाहे वह मिथ्यादृष्टि हो या सम्यग्दृष्टि। और ऐसे गुणों की पर्यायें भी निरावरण होने से शुद्ध कहलाती हैं। पर्यायों में शुद्ध-अशुद्धपने का व्यवहार आवरण की अपेक्षा ही किया जाता है। जो ऐसा कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि के भी अनन्त गुणों का अनन्तवां भाग शुद्ध होता है वे क्षयोपशमभाव की अपेक्षा कहते होंगे। क्योंकि क्षयोपशम अवस्था में ज़ो ज्ञान आदि भाव प्रकट रहता है वह प्रकट अंश ज्ञान आदि रूप ही कहा जाएगा। येनांशेन विशुद्धिः इत्यादि वचन जो कहा गया है इसमें चारित्र की मुख्यता है। यह उसका उदाहरण है।

*(वाराणसी, दि १६-११-८० ई.)*

(७) **शंका** - जिसका आगे उदय होना है ऐसी प्रकृतियों का ही इस भव में बंध होता है, ऐसा माने में कैसी आपत्ति होती है। अपने विचारों द्वारा लाभान्वित कराने की कृपा कीजिए।

**समाधान** - अभव्यजीव बहुत हैं उनके मनः पर्यय ज्ञानावरण तथा केवलज्ञानावरण का बन्ध होता है। इसलिए यह मान्यता योग्य नहीं कि जो भाव आगे प्रकट हो उसी का बन्ध हो। बन्ध का कारण योग और कषाय है। अतः जब जब जैसे कषाय व योग होते हैं तब वैसा (कषाय व योग के अनुसार) बन्ध होता है। उसमें भी ज्ञानावरण के पाँचों भेद ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए किसी भी जाति की कषाय क्यों न हो उनका दसम गुणस्थान तक बन्ध अवश्य होगा। क्षपक श्रेणि में आठवें गुणस्थान में भी परभव सम्बन्धी देवगति आदि का बन्ध होता है, पर वह आगे देव नहीं होता, क्योंकि वह तो उसी भव से मोक्ष जाता है। "बन्ध हुआ है इसलिए आगे वह पर्याय होनी ही चाहिए", ऐसा कोई नियम नहीं है, अन्यथा संक्रमण आदि की व्यवस्था ही समाप्त हो जाएगी। (देखें ज.ध. १४/१७८)

*(वाराणसी, दि १६-११-८० ई.)*

(८) **शंका** - केवलज्ञान होने पर कमण्डलु पिच्छि का का क्या होता है।

**समाधान** - केवलज्ञान होने पर साधु के कमण्डलु पिच्छी का क्या होता है, कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ले लेता है या वहीं पड़े रहते हैं, इस विषय में शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है।

*(वाराणसी, दि. ८-१२-८०)*

(९) **शंका** - सर्वजीवों के सामान्य गुणों की पर्यायें शुद्ध ही होती हैं, इस कथन का हेतु तथा अर्थ/अभिप्राय स्पष्ट करावें।

**समाधान** - चाहे अभव्य हों या भव्य, सभी के सामान्य गुणों की पर्यायें पर पदार्थ को (कर्म को) कर्ता या कारण निमित्त बना कर उत्पन्न नहीं होती। इसलिए शुद्ध अर्थात् पर निरपेक्ष ही होती हैं। पर्यायों में "शुद्ध" का सर्वत्र यही अर्थ है।

*(वाराणसी, दि. ८-१२-८०)*

(१०) **शंका** - कर्म बन्ध जो होता है वह द्रव्य पर है या गुण पर या पर्याय पर। केवलज्ञान शक्तितः पर्याय रूप से अभव्यों के होता है या द्रव्यरूप से होता है। सामान्यज्ञान शक्ति को केवलज्ञान कैसे कहा।

**समाधान** - बन्धपर्याय पर नहीं होता। उदयादि से वह प्रकट होती है। बन्ध द्रव्य शक्ति पर होता है। जिससे कि जब तक कर्म का उदय बना रहता है तब तक वह स्वभाव पर्याय प्रकट नहीं हो पाती, औदयिक पर्याय ही प्रकट रहती है। अज्ञान उसी का नाम है। केवलज्ञान द्रव्यरूप से अभव्यों के भी होताहै। जो सामान्य ज्ञान है, आवरण के अभाव में वही जब पूर्णरूप से प्रकट होता है तब वही केवलज्ञान कहलाता है। इसलिए अनेक शास्त्रकारों ने सामान्य ज्ञानशक्ति को ही केवलज्ञान शक्ति कहा है।

*(वाराणसी, दि. ८-१२-८०)*

(११) **शंका** - अभव्य तथा अभव्य - समान भव्य में क्या अन्तर है। दोनों के केवलज्ञानावरण कर्म हैं अतः दोनों में केवलज्ञान शक्ति तो है ही, क्योंकि असत् पर आवरण नहीं पड़ सकता। सत् ही अव्रियमाण हो सकता है। यदि यह कहा जाए कि अनन्तकाल बाद भी काल का आगामित्व क्षय के सम्प्राप्त नहीं होता, अतएव अभव्य समान भव्यों का भी भव्यत्व तो क्षीयमाण हो सकता नहीं। तो इस पर तर्क यह है कि अनन्तकाल बाद भी "काल" (कालद्रव्य) की अक्षीयमाणता अटल रहने से तन्निमित्तक भव्य तथा अभव्य जीवों की वर्तना तो रहेगी, किंच दोनों में (अभव्यसमान भव्य तथा अभव्य) तब भी केवलज्ञानावरण भी रहेगा ही, क्योंकि उसके नष्ट होने पर तो दोनों को भव्यत्व (आसन्न भव्यत्व) प्राप्त होगा। पारिशेषन्यायतः दोनों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


**समाधान** - आपकी जिज्ञासाएँ बहुत हैं। ऐसा लगता है कि आप उन सबका समाधान कर लेना चाहते हैं। यह अच्छी बात है। अपने में निःशंक होना, यह सम्यक्त्व का प्रथम गुण माना गया है। समाधान निम्न प्रकार है - पहले तो इन दो बातों को हमें मन में रख लेना आवश्यक है कि - (१) कोई भी गुण बिना पर्याय के नहीं रहता, अन्यथा उसका परिणाम-स्वभाव समाप्त हो जाए। फिर तो उसे मात्र नित्य स्वभाव मानना पड़े, जो जिनागम को मान्य नहीं। (२) जितने काल के समय हैं उतनी ही पर्यायें (प्रत्येक द्रव्य की) होती हैं, न न्यून होती है न ही अधिक। इसके लिए आप्तमीमांसा का निम्न वचन द्रष्टव्य है - नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः अविभ्राड् भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा। जीवकाण्ड के सम्यक्त्व अधिकार में भी इसके अनुरूप कथन पाया जाता है।

अब उत्तर यह है कि केवलज्ञान कोई स्वतंत्र गुण नहीं है। ज्ञानगुण की एक पर्याय है। जहाँ भी ज्ञानगुण को केवलज्ञान कहा गया है वह पूर्णता की अपेक्षा ही कहा गया है। वैसे ज्ञानगुण है और आवरण भेद से वह पाँच प्रकार का हो जाता है। वस्तु का ऐसा ही स्वभाव है। इसी के लिए यह कारिका द्रष्टव्य है -

शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्तिः ते पाक्यपाक्य-शक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावो तर्कगोचरः ॥

*(आप्तमीमांसा १००)*

आप जानते ही हैं कि २१ औदयिक भावों में एक अज्ञान भाव भी है तथा ज्ञानावरण के उदय में जो भाव प्रकट होता है उसे ही अज्ञान कहा गया है। इसके लिए तत्त्वार्थवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि आदि देखिए। इसलिए यह निष्कर्ष निकला कि जो अभव्य समान भव्य हैं, उनमें भी द्रव्ययोग्यता है और अभव्यों में भी। परन्तु अभव्यों में सम्यग्ज्ञानरूप उपादान योग्यता का सर्वथा अभाव है। अभव्य समानभव्यों में उपादान योग्यता तो होती है, पर अनुकूलता कभी नहीं बनती, इसलिए उनमें भी सम्यकज्ञान, सम्यक्त्व आदि पर्यायें प्रकट नहीं होती। इसलिए वे भी अभव्य के समान ही हैं। यह कथन संभावना सत्य की अपेक्षा समझना चाहिए "सक्को जंबूदीवं पल्लट्टदि" (इन्द्र जम्बूद्वीप को उथलपुथल कर सकता है) यह संभावना सत्य का उदाहरण है।

लोक में देखते भी हैं कि जितनी भी लोक में चिकनी मिट्टी है उसमें और रेतीली मिट्टी में बड़ा अन्तर है। फिर भी सभी चिकनी मिट्टी पुद्गल की सर्व पर्यायों को प्राप्त हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। इसी न्याय से प्रकृत में निर्णय कर लेना चाहिए।

*(वाराणसी दि. २८-१-८१)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


(१२) शंका - महिलाओं (स्त्रियों) को अंग पूर्व पढ़ने का अधिकार है या नहीं। आगम में महिलाओं को आर्यिका अवस्था में ग्यारह अंग का पाठी होना तो बताया है, परन्तु इससे अधिक नहीं। यथा- एकादशांग भृज्जाता साऽऽर्यिकाऽपि सुलोचना। हरिवंश पुराण १२/५२ अर्थात् आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंग की धारी हुई।

इसी तरह द्वादशांग का अध्ययन गृहस्थ नहीं कर सकता, ऐसा अनेक शास्त्रों में लिखा है। सभी पुरुषों ने दीक्षा ग्रहण करके फिर निग्रन्थ मुनि बनकर ही द्वादशांग का अध्ययन किया था। इसके लिए निम्न स्थल स्पष्ट प्रमाण हैं :- उत्तर पुराण ५१/९३, ५९/८-९, ६३/३०७, ६४/८-१०, ६५/६-७, ६७/१२-१४, ७३ ७४/२४४ आदि। परमात्मप्रकाश में भी लिखा है कि जिनदीक्षां गृहीत्वा द्वादशांगं पठित्वा अर्थात् जिनदीक्षा-मुनिदीक्षा ग्रहण करने के बाद द्वादशांग पढ़े। फिर . . . (१/९९ पृ. ९४ राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) धवल १/७२ में भी बताया है कि षट्खण्ड का आद्य अंश भी जिनपालित को मुनि दीक्षा देने के बाद पढ़ाया गया। क्योंकि यह अग्रायणीय से हुबहू गृहीत है। अत: महिलाओं तथा अव्रती पुरुषों को पूर्वगत ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार नहीं है, यह तो अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। इस पर आप अपना अभिमत/आगम का हार्द प्रकट करावें।[१]

समाधान - हम तो इस बात के पक्षधर हैं कि महिलाओं या गृहस्थों को पूर्वगत शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है। हमने इसी बात को तुलसीप्रज्ञा नामक मासिक पत्रिका में भी प्रकाशित करावाई थी। वहाँ इस प्रकार मुद्रित हुआ है - व्रती श्रावक को ११ अंगों की वाचना दी जाए, इसमें कोई बाधा नहीं है। इतना अवश्य है कि व्रती श्रावक को सूत्र पठित क्रम से ही वाचना दी जानी चाहिए, अन्यथा वाचना देने वाला आचार्य निग्रह-स्थान का भागी होता है। (पु.सि. श्लोक १८)। किन्तु १४ पूर्वों की वाचना व्रती श्रावक को तो नहीं ही दी जा सकती, पर जिसने उपचरित महाव्रतों को अंगीकार किया है, ऐसी आर्यिका को भी नहीं दी जा सकती।

जो वाचना देने वाले आचार्य के द्वारा दीक्षित होकर महाव्रतधारी निग्रन्थ दिगम्बर मुनि होते हैं वे ही १४ पूर्वों की वाचना (शिक्षा या ज्ञान का अध्ययन) लेने के अधिकारी हो सकते हैं, इन दोनों तथ्यों की पुष्टि उस इतिहास से भी होती है जो धवल १/७१ में निबद्ध है। वहाँ लिखा है कि जब आचार्य पुष्पदंत ने जीवस्थान सत्प्ररूपणा की रचना कर ली और स्वयं को अल्पायु जाना तब उन्होंने सर्वप्रथम जिनपालित को मुनिदीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया। तब फिर उसके बाद ही उन्होंने जीवस्थान सत्प्ररूपणा के

१. यही प्रश्न मैंने गुरुजी से _ ८१ में बनारस प्रवास के समय पूछा था। तदनन्तर इसी प्रश्न को मैंने जबलपुर वाचना के दौरान (जून ८४ ईस्वी) भी पूछा। सभी बार उनका एक ही उत्तर था कि "स्त्रियों या श्रावकों को "पूर्व" की एक पंक्ति पढ़ने का भी अधिकार नहीं है। आगम तथा इतिहास इसी का साक्षी है।" -लेखक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सूत्र मुनि को पढ़ाकर उन्हें अपने समानधर्मा सहपाठी भूतबलि आचार्य के पास भेजा। तभी उनके द्वारा सत्प्ररूपणा प्रमुख समग्र षट्खण्डागम की रचना होकर ज्येष्ठ शु. ५ को वह पुस्तकारूढ़ हो सका। आगम में वाचना के जो लक्षण उपलब्ध होते हैं, उनसे भी हमारे उक्त तथ्य का समर्थन होता है।

*(स.सि.अ. ९ सूत्र २५)*[१]

हमने "मूलसंघ शुद्धाम्नाय का दूसरा नाम ही तेरापन्थ है" नामक लेख में भी यही लिखा है कि -

ऐसा नियम है कि पूर्वों का अध्ययन श्राविका की बात को तो छोड़िए, आर्यिका को भी नहीं करना चाहिए, ऐसी आगम की आज्ञा है। तथा प्रवचन भी उसे बहिनों में ही करना चाहिए...।[२]

हर बात तर्क से बिठाना और फिर ही मानना, यह मार्ग नहीं है। आगम केवली की दिव्यध्वनि पर से संकलित किया गया है। आनुपूर्वी से मिलान कर उसे प्रमाण रखना, यह अपनी परम्परा है। तर्क उसके (आगम के) अनुकूल ही होना चाहिए। मात्र तर्क से निर्णय करना, यह मार्ग नहीं है।

*(वाराणसी दि. १७-१०-८० ई.)*

(१३) **शंका** - निदानशल्य देशव्रती के होता है या नहीं। उसके निदान आर्तध्यान नहीं होता। इसे स्पष्ट कीजिए। निदान की स्थितित्रय को स्पष्ट कीजिए। मुख्य निर्णेय यह है कि सम्यक्त्वी को कैसा, किस विधा का निदान होता है।

**समाधान** - निदान के विषय में शंका विदित हुई। धार्मिक आचरण के फलस्वरूप आगामी लौकिक उन्नति की कामना करना निदान है।

**तीन स्थितियाँ हैं** - एक सम्यग्दर्शन की, दूसरी असंयम की और तीसरी देशसंयम की। श्रद्धा की दृष्टि से निदान का परिहार सम्यग्दृष्टि से यद्यपि भले ही हो जाता है। तथापि असंयम की दृष्टि से बाह्य संयोग की वृद्धि की कामना सम्यग्दृष्टि के होती ही है। यह लौकिक अभिवृद्धि का कारण होता है। इस प्रकार के निदान का भाव सम्यग्दृष्टि के भी होता है। देशसंयमी के भी परिग्रह की मर्यादा के भीतर उसे बढ़ाने का भाव होता है, यह भी लौकिकता का भाव है। इसी अभिप्राय से पाँचवें गुणस्थान तक निदान आर्तध्यान कहा गया है। निदान शल्य देशव्रती के नहीं होती, किन्तु परिग्रह आदि के हानि वृद्धि का भाव तो व्रतीश्रावक के भी बना रहता है। यही निदान शल्य तथा निदान आर्तध्यान में अन्तर है।

---

१. सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री सा. का तुलसी प्रज्ञा खण्ड ६ अंक ९ पृष्ठ ५-६ में प्रकाशित लेख। See Also पं. फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. ३२७ तथा ५४० में गुरुवर्य पं. फूलचन्द्र जी के स्वयं के उद्गार।

२. सम्प्रति यह लेख पं. फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ के पृष्ठ ५३५ से ५४० तक में छपा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आप तो विवेकी हैं। जिसका जब तक संयोग का योग होता है तभी तक वह रहता है। विवेकी उसे भुलाने का प्रयत्न करते हैं।

*(वाराणसी दि. २९-११-८२ ई.)*

(१४) **शंका** - हरिषेण कथाकोश में आ. हरिषेण ने रुक्मिणी के तीर्थंकर प्रकृति का बंध होना कहा है। परन्तु संसार के अन्य सभी दि. ग्रन्थों में इससे विपरीत कथन है। अतः आप इस विषय में अपना अभिमत देने की अनुकंपा करावें।

**समाधान** - हरिषेण काष्ठासंघी आचार्य थे। पुन्नाट संघ उसी का एक भेद है। मूलसंघी आचार्य तथा दूसरे काष्ठासंघी आचार्य इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। इसलिए हरिषेण कथाकोश के उल्लेख को आगम नहीं मानना चाहिए। आगम वही बात होती है जो सब आचार्यों की सम्मत हो। जो कथन आचार्य परंपरा-सम्मत हो उसे ही मानना चाहिए।

पत्रोत्तर हेतु आप पोस्टेज नहीं भेजें, हम ही खर्च करेंगे। आपकी शंकाओं के माध्यम से हमारा ज्ञान बढ़ता है।

(१५) **शंका** - धवल पु. १ पृ. २५६ विशेषार्थ अंतिम पंक्ति में लिखा है - "यहाँ जो वेदना खण्ड के सूत्र उद्धृत किए गए हैं उनमें सप्रतिष्ठित बादर वनस्पति से अप्रतिष्ठित बादर वनस्पति का स्थान स्वतन्त्र माना है। फिर भी यहाँ (धवल १/२५४ से ५५ में) "सव्वत्थोवा... संखेज्जगुणात्ति" इन्हीं सूत्रों में सप्रतिष्ठित के स्थान को अप्रतिष्ठित के स्थान में अन्तर्भूत करके सप्रतिष्ठित वनस्पति का स्वतन्त्र स्थान नहीं बतलाया है।"

स्वतंत्र स्थान बतलाया तो है, कैसे नहीं बतलाया ?

**समाधान** - यह विशेषार्थ सम्बन्धी अन्तिम पंक्ति मूल के आधार पर लिखी गई है। यहाँ मूल (संस्कृत-धवला) में बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों को अल्पबहुत्व में अलग से परिगणित नहीं किया है। इस पर जो टिप्पणी है - (बादरणिगोदपदिट्ठिद-पज्जत्ता किमिदि सुत्तम्हि ण वुत्ता ? ण तेसिं पत्तेयसरीरेसु अंतब्भावादो। धवला अ.पृ. २५०) यह ठीक ही है। इसे पढ़िए। यही प्रश्नोत्तर पु. १ पृ. २७३ में भी आया है जो इस प्रकार है - बादरनिगोदप्रतिष्ठिताश्चार्षान्तरेषु श्रूयन्ते, क्व तेषामन्तर्भावश्चेत् ? प्रत्येकशरीरवनस्पतिस्विति ब्रूमः। इसलिए हमने जो विशेषार्थ लिखा वह ठीक है। हां, अनुवाद को हमने उस स्थल पर मूलानुगामी नहीं लिखा है। इतना अवश्य है। इसी से सम्भवतः आपकी शंका हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**शंका** - पु. १४ पृ. १४८ (धवला) यहाँ आगत 'चतुः स्थान' शब्द से क्या गृहीत है ? नाना श्रेणि की अपेक्षा भी वर्गणाएँ चतुः-स्थान-पतित नहीं हो सकती, क्योंकि परमाणु वर्गणाओं से द्विगुणीहीन वर्गणाएँ असंख्यात प्रदेशी वर्गणाओं में जाकर प्राप्त होती हैं। क्योंकि द्विगुणहानि का प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण है। (द्रष्टव्य १७९, १८४.....)

**समाधान**- यहाँ चतु:स्थान से संख्यात भागवृद्धि संख्यातगुण-वृद्धि संख्यात भाग हानि और संख्यात गुणहानि ली गई जान पड़ती है। इससे एकश्रेणि वर्गणा में भी चतु:स्थान पतित घटित हो जाता है। सर्वत्र षट्स्थान पतित वृद्धि तथा षट्स्थानपतित हानि की विवक्षा में यह सब बन जाता है। उक्त वचन का कदाचित् यह अर्थ हो सकता है, पर यह अर्थ स्वीकार करने पर आगे असंख्यात प्रदेशी वर्गणाओं में यह अर्थ घटित नहीं होता। इसलिए यह पाठ तो विचारणीय है ही। फिर भी जब तक ताड़पत्र प्रति पर दृष्टिपात न किया जाए तब तक उसे विचारणीय विषयों में रखना होगा।

**विशेष** - मुझ जवाहरलाल के पास सर्व ताड़पत्रीय पाठ भेद भी उपलब्ध हैं, पर प्रकृत स्थल संबंधी कोई पाठ भेद सम्प्राप्त नहीं होता।

**शंका** - धवल पु. १४/२१९ दव्ववग्गं होदि। अत्र "वग्ग" शब्दस्य कोऽभिप्रायः ? (यहाँ वर्ग का क्या अर्थ ?)

**समाधान**- यहाँ द्रव्य का वर्ग अर्थात् द्रव्य के प्रदेश, ऐसा अर्थ करना चाहिए। वर्ग अर्थात् प्रदेश। क्योंकि वर्ग, वर्गणा में वर्ग का अर्थ प्रदेश होता है।

**शका** - धवल १४/४१० में लिखा है कि 'जहाँ पर उदय में दो समयप्रबद्ध गलते हैं' .. यहाँ प्रश्न यह है कि कहाँ पर गलते हैं ?

**समाधान** - औदारिक शरीर की अपेक्षा जितनी स्थिति बने उसके उतने निषेक कर लें। पुनः एक समय कम के एक समय कम स्थिति प्रमाण निषेक कर लें। इस विधि से संचित द्रव्य का जहाँ दो समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य निर्जीर्ण हो ऐसी गणित करने पर नियत स्थान निकाला जा सकता है। आप गणित बिठाकर देखलें। नियत स्थान उसी से प्राप्त होगा। पहले तो दोनों उपदेशों को प्रयोजन जान लें, फिर भगवद् वीरसेन स्वामी क्या कहना चाहते हैं, यह समझने में आसानी हो जाएगी।

**शंका** - धवला जी पु. १५ पृ. १५३ अल्पतर उदीरकों से अवस्थित उदीरक असंख्यात गुणे कैसे हैं ?

---

नोट :- इस प्रकरण में पं. फूलचन्द्र जी से प्रत्यक्ष चर्चा के दौरान प्राप्त ३५ समाधान लिखे गए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**समाधान** - अल्पतर उदीरकों के काल से अवास्थित उदीरकों का काल असंख्यातगुणा है। इसलिए अपने काल में संचित हुए वे अल्पतर उदीरकों से असंख्यात गुणे हो जाते हैं।

**शंका** - देव नारकियों में भुजगार उदीरक कैसे संभव है ?

**समाधान** - ऐसा लगता है कि जितने देव और नारकी अल्पतर उदीरक होकर वहाँ से च्युत होते हैं उतने ही अन्य पर्याय से आकर वहाँ जन्म लेते हैं। इन्हें ही भुजगार स्वीकार कर दोनों को समान कहा है।

*(दि. २९-५-८२ वाराणसी)*

**शंका** - धवल १५/१४१ में १६ भंग करने बताए। वे कैसे होंगे ?

**समाधान** - वे १६ भंग ये होंगे - एक जीव उदीरक, एक जीव अनुदीरक अनेक जीव उदीरक, अनेक जीव अनुदीरक, एक जीव उदीरक तथा एक जीव अनुदीरक, अनेक जीव उदीरक और एक जीव अनुदीरक, एक ज़ीव उदीरक और अनेक जीव अननुदीरक। अनेक जीव उदीरक तथा अनेक जीव अनुदीरक : ये आठ भंग उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा की अपेक्षा हैं। इसी प्रकार ८ भंग अनुत्कृष्ट स्थिति उदीरणा की अपेक्षा बनेंगे। इस तरह कुल १६ भंग हो जाते हैं। ये सम्यग्मिथ्यात्व तथा आहारक शरीर दोनों की अपेक्षा घटित कर लेने चाहिए। अन्य कथित प्रकृतियों में भी इसी प्रकार जानना।

*(दि. २९-५-८२ वाराणसी)*

**शंका** - धवल १५-१८२ "जघन्य स्थिति में", यहाँ स्थिति पद से किसका ग्रहण है ?

**समाधान** - यहाँ आयुकर्म की स्थिति से तात्पर्य प्रतीत होता है।

*(दि. २९-५-८२ वाराणसी)*

## पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री (काशी) के समाधान[१]

**नोट** - मैं अपनी कुछ शंकाओं को लेकर, गुरुवर्य पं. फूलचन्द्र जी से आदेश प्राप्त कर वाराणसी (काशी) पहुँचा। दि. १७-१०-८१ से मेरी शंकाओं को मेरे द्वारा पूछा जाना तथा समाधान प्राप्त करना, यह महनीय प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। एतदर्थ लगभग अर्द्धमास मैं वहाँ रहा। मेरी शंकाओं के समाधान जो आपने बताए उन्हें मैं यहाँ इस रूप में उद्धृत कर रहा हूँ कि मेरी शंकाएँ क्या थी, यह सहज ही ज्ञात हो जाएगा अतः नीचे मैं शंकाएँ नहीं लिख रहा हूँ। मांत्र उनके समाधान ही लिख रहा हूँ, ताकि अधिक विस्तार न हो।

---

१. इस प्रकरण में पं. फूलचन्द्र जी से प्रत्यक्ष चर्चा के दौरान प्राप्त ३५ समाधान लिखे गए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**समाधान नं. १** - लब्धि तथा उपयोग दोनों पर्यायें हैं, परन्तु उपयोग लब्धिरूप पर्याय नहीं है। उपयोगव्यापारात्मक पर्याय है। लब्धि अव्यापारात्मक पर्याय है।

**समाधान नं. २** - अस्तित्व आदि सामान्य गुणों की पर्यायें मिथ्यात्वी के भी शुद्ध हैं। (शुद्ध = परनिरपेक्ष)

**समाधान नं. ३** - अभव्य तथा अभव्य समान भव्य, इन दोनों में से (भविष्य की पर्यायों में से) केवलज्ञान पर्याय किसमें है, किसमें नहीं है, यह निर्णय केवली गम्य है।

परन्तु दूसरे दिन आपने कहा था -

अभव्य समान भव्यों में अक्षयानन्त पर्यायों के बाद भी केवलज्ञान पर्याय नहीं है। दूरातिदूर भव्य तथा अभव्य समान भव्य, एक ही बात है।

**समाधान नं. ४** - औदारिक शरीर आदि नोकर्मों में भी प्रकृति, स्थिति व प्रदेश की तरह अनुभाग भी नियम से है। अन्यथा औदारिक शरीर फल कैसे देगा।

**समाधान नं. ५** - दोनों प्रकार के तैजस शरीर नहीं दिखते। (जहाँ तक मुझे याद है, उसके आधार पर मैं (फूलचन्द्र) उत्तर दे रहा हूँ)

**समाधान नं. ६** - अवधिज्ञानावरण के क्षय का मतलब केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। अवधिज्ञानावरण का क्षय बारहवें गुणस्थान से पूर्व नहीं होता।

**समाधान नं. ७** - पंचमकाल में जन्म लेने वाला जीव मनःपर्यय ज्ञान का स्वामी नहीं हो सकता।

**समाधान नं. ८** - प्रत्येक संसारी प्राणी को पाँचों अन्तराय कर्मों का क्षयोपशम है। निगोद के भी पाँचों अन्तराय कर्मों का क्षयोपशम नियम से है।

**समाधान नं. ९** - क्षुल्लक यद्यपि सूक्ष्म असत्य भी नहीं बोलता, तथापि उसके सूक्ष्म असत्य के त्याग का नियम नहीं, अतः वह स्थूल असत्य का त्यागी ही गिना जाएगा। इसका कारण यह है कि पाँचवें गुणस्थान की कषायों से छठे गुणस्थान की कषायें हीन कोटि की हैं। फलस्वरूप छठे गुणस्थान में तो वचन सर्वथा असत्यता रहित ही होगा।

**सूक्ष्म असत्य का उदाहरण** - जैसे पका आम सामने पड़ा है। उस पके आम को कहना कि पका आम है, स्थूल सत्य है। परन्तु सामने पड़ा हुआ आम ९९.९% ही पका हुआ है। परन्तु इस ०.१ प्रतिशत कचाई को कहने वाला भी नहीं जानता है। यहाँ कोई अवधिज्ञानी आकर कहे कि "यह आम कुछ अंशों में अपक्व भी है तथा बहुत अंशों में पक्व। अतः तुम्हारा कथन कि आम पका है, सूक्ष्म असत्य है। सारतः जो सामान्य जनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के ज्ञान में न आवे, ऐसा वचन स्थूलत: सत्य होता हुआ भी, सूक्ष्म असत्य है। इसी तरह ९९.९ प्रतिशत शुद्ध सोने को १०० टंच शुद्ध कहना सूक्ष्म असत्य है।"

सर्वत्र यह तो जानना ही चाहिए कि प्रमत्त योग से बोला गया वाक्य असत्यता को प्राप्त है। अत: साधु इस निष्प्रमत्त भाव से ऐसा बोलते हैं कि "भाई दिखने में तो आम पक्व प्रतीत हो रहा है, अंशापक्वता मुझे ज्ञात नहीं।"

समाधान १० - अभिन्न दश पूर्वी तथा अभिन्न एकादश पूर्वी आदि मुनि भी उस भव में असंयम को प्राप्त नहीं होते, ऐसा अनुमान होता है।

समाधान ११ - समयसार के अभिप्रायानुसार अध्ययवसान मिथ्यात्वी के होते हैं, सम्यक्त्वी के नहीं।

समाधान १२ - समयसार आ. ख्या. २१७ में रागद्वेष मोहाद्या: में स्थित आदि शब्द से योग लेना चाहिए। सुखः दुखाद्या: पद में स्थित आदि शब्द से शरीर, बाह्यसंयोग तथा भोग के निमित्त भूत बाह्य पदार्थ गृहीत हो जाते हैं।

समाधान १३ - समयसार में प्राय: कर्मशब्द से द्रव्यकर्म व भावकर्म दोनों लिए हैं।

समाधान १४ - धवला का पूरा अनुवाद हमारा (पं. फूलचन्द्र जी का) ही है, दूसरों का नाम तो औपचारिक है। (जो कि धवला में छपे हैं)

समाधान १५ - जिस जिस जाति का मतिज्ञान हमें नहीं है उस उस जाति (= भेद) के मतिज्ञान के आवारक कर्मों का हमारे सर्वघाती स्पर्धकोदय है, ऐसा जानना। सारत: हमारे/आपके मतिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय भी (किसी भेद-विशेष की अपेक्षा) है।

समाधान १६ - किसी कार्य विशेष को करने वाले निक्षेपाचार्य कहलाये होंगे। ऐसा नहीं समझना कि निक्षेपाचार्य नाम के कोई आचार्य थे।

समाधान १७ - (धवल ७ पृ. ९३ से सम्बद्ध समाधान) जो सत्ता में स्थित है, ऐसे सर्वघाति स्पर्धकों का वास्तव में सर्वघाती रूप से ही अवस्थान है। और ऐसा अवस्थान है कि सत्ता में स्थित वे सर्वघाती स्पर्धक सर्वघाती रूप से रहते हुए भी उदीरणा को प्राप्त नहीं होते। यही उनका सद् अवस्था रूप उपशम है, न कि "उनका देशघाती रूप से सता में अवस्थान उपशम है।"

समाधान १८ - भोगभूमिज मनुष्यों में तीर्थंकर प्रकृति का सत्व नहीं है।

समाधान १९ - (ध. ७/९३ से सम्बद्ध पुन: खुलासा अगले दिन)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


"और उनका देशघाती रूप से अवस्थान रहना ही उपशम है", इस वाक्यांश का अर्थ इतना मात्र लेना कि "सत्ता में स्थित सर्वघाती स्पर्धकों की उदीरणा न होना।"

क्षयोपशम भाव में देशघाती स्पर्धकों के उदय के वक्त सत्ता में स्थित देशघाती सर्वघाती जो स्पर्धक हैं उनमें से भी देशघाती स्पर्धक की ही उदीरणा होगी। यानी उदीरणा भी सर्वघाती स्पर्धकों की नहीं होगी।

समाधान २० - स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अस्ति नास्ति। यहाँ तीसरा भंग भी प्रथम दो धर्मों से भिन्न ही, किसी पृथक् ही तीसरे धर्म को कहता है, उक्त दोनों का मेल रूप नहीं। सातों भंगों द्वारा अलग-अलग धर्म कहे गए हैं।

समाधान २१ - कर्मशास्त्र में "वेद" से सर्वत्र भाववेद का ग्रहण किया गया है। जैसे "१०० पल्य पृथकत्व तक स्त्रीवेद का काल है", इसका अर्थ यह हुआ कि इतने काल तक भाव स्त्रीवेद का उदय (अर्थात् स्त्रीवेद नामक नोकषाय का उदय) एक जीव के रह सकता है। (धवल ४/४३७) और भी देखें महाधवल ७ तथा ६/१४९

समाधान २३ - अत्यन्ताभाव के उदाहरण - जीव के ज्ञानगुण का पुद्गल में, जीव का पुद्गल में, एक परमाणु का दूसरे परमाणु में, एक जीव का दूसरे जीव में अभाव अत्यन्ताभाव कहलाता है।

अन्योन्याभाव के उदाहरण - यह दो भिन्न-भिन्न पुद्गलों की वर्तमान व्यंजन पर्यायों में लगता है। एक पुद्गल की व्यंजन पर्याय का अन्य पुद्गल की व्यंजन पर्याय में अन्योन्याभाव है।

कुछ विद्वान् मात्र पुद्गलों की वर्तमान पर्यायों में ही परस्पर में अन्योन्याभाव बताते हैं परन्तु हमारे चिन्तन से तो दो पृथक्-पृथक् जीवों की वर्तमान व्यंजन पर्यायों में भी अन्योन्याभाव है। जैसे मुझ मनुष्य से आपकी मनुष्य पर्याय में अन्योन्याभाव है। लेकिन द्रव्यपने की अपेक्षा तो आप (मनुष्य) का मुझ (मनुष्य) में अत्यन्ताभाव है। एक ही जीव के दो गुणों में परस्पर में कोई भी अभाव (अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव, प्रागभाव या प्रध्वंसाभाव) घटित नहीं होता। वहाँ तो कथंचित् भेदाभेद है।

समाधान २४ - "हन्त। व्यवहारावलम्बनः" इस कथन में व्यवहार का अवलंबन छठै गुणस्थान तक ( = विकल्प की भूमिका तक) है। बुद्धि पूर्वक व्यवहार का अवलंबन छठै गुणस्थान तक होता है। स्वस्थान अप्रमत्त संयत मुनिराज के भी निश्चय का अवलंबन ही है, व्यवहार का नहीं।

समाधान २५ - चौथे गुण में व्यवहार का अवलंबन भले ही हो, पर वहाँ पर भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्यवहार में उपादेय बुद्धि नहीं है।

**समाधान २६** - "अबुद्धिपूर्वक व्यवहार का अवलंबन", ऐसा नहीं होता। परन्तु व्यवहार का अवलंबन तो बुद्धिपूर्वक ही होता है। अबुद्धिपूर्वक अवस्था में जो व्यवहार है वह तो होता है, इतना मात्र कहो। अबुद्धिपूर्वक राग १०वें गुणस्थान तक होता है।

**जून, ८४ में मिले समाधान (प्रवास - जबलपुर, म.प्र.)**

**समाधान २७** - द्रव्य नपुंसक तिर्यंच तो पंचम गुणस्थान प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि तिर्यंच सम्मूर्च्छनों के आगम में पंचम गुणस्थान बताया है। सम्मूर्च्छन मत्स्य आदि संयमासंयम को प्राप्त होते हैं और नारक सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि के अनुसार वे पंचम गुणस्थानवर्ती सम्मूर्च्छन तिर्यंच नियम से नपुंसक हैं, द्रव्य से भी। फिर द्रव्य नपुंसक मनुष्य पंचम गुणसथान तक क्यों नहीं जा सकता है, अवश्य जा सकता है।

*(देखें जयध. १२ प्रस्ता.पृ. २०)*

**समाधान २८** - धवल १४/२३६ में लिखा है कि "एक-अन्तर्मुहूर्त में प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव नित्यनिगोद से निकलकर त्रस तथा इतर निगोदपने को प्राप्त करते हैं।" इस कथन से पं. प्यारे लाल जी कोटड़िया (उदयपुर) का यह निर्णय लेना ठीक नहीं है कि ६ मास ८ समय में नित्यनिगोद से ६०८ से भी अधिक जीव निकलते हैं। धवल १४/२३६ से तो यह ध्वनित होता है कि कुल पाँचों स्थावरों में से कुल मिलाकर, एक अन्तर्मुहूर्त में असंख्यात जीव त्रस पर्याय पाते हैं, न कि मात्र नित्यनिगोद से निकलकर।

यह अटल सत्य है कि छह मास आठ समय में ६०८ जीव ही नित्यनिगोद से निकलते हैं तथा अन्य पर्याय धारण करते हैं तथा इतने ही जीव, इतने ही काल में मोक्ष चले जाते हैं। (मो.मा.प्र.पृ. ४६-४७ धर्मपुरा दिल्ली : गो.जी., जीव.प्रदी. १९७ सुदृष्टि तरंगिणी पृ. १०७, १११ जैन गजट दि. ४-१-६८ आदि)

ध. १४/२३६ के विवक्षित वाक्यों का अर्थ तो ऐसा है कि नित्य व इतर निगोद तथा अन्य स्थावर चतुष्टय व प्रत्येक वनस्पति से अन्तर्मुहूर्त में कुल प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव निकलते हैं तथा "आयानुसारी व्यय" के नियमानुसार इतने ही जीव त्रसों में से अन्तर्मुहूर्त में "इतर निगोद, पृथ्वी जल अग्नि वायु, प्रत्येक वनस्पति" को चले जाते हैं। ऐसा अर्थ है। धवल १४/२३६ से ऐसा अर्थ थोड़े ही निकलता है कि नित्य निगोदों से अन्तर्मुहूर्त में प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव त्रसों में आते हैं। वहाँ "नित्य निगोद", ऐसा वाक्य भी नहीं पड़ा है।

*(दि. ३-६-८४ जबलपुर)*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



**समाधान २९** - पंचम काल में साढ़े सात करोड़ मुनि भरत क्षेत्र से निगोद में जाएँगे, ऐसा वाक्य आचार्य प्रणीत मूल ग्रन्थ में मेरे कहीं देखने में नहीं आया।

**समाधान ३०** - "अपक्वपाचनं उदीरणा" ऐसी उदीरणा की परिभाषा होने पर : ऊपर से जो द्रव्य उदयावलि में दिए जाते हैं, वहाँ उदयावलि में प्रविष्ट द्रव्यों में से भी उदीयमान निषेक में आगत द्रव्य की ही उदीरणा संज्ञा है।

**समाधान ३१** - जो मुनि जंगल में दीक्षित होते हैं उनको कमण्डलु-पिच्छिका देव आकार देते हैं। कभी-कभी ऐसे दीक्षित मुनि स्वयं तूमड़ी की कमण्डलु तथा दो-चार मयूर पंखों की पिच्छिका तैयार करके काम चला लेते हैं, ऐसा श.वा. में आया है।

जयधवला का संशोधन कार्य करने जब मैं हस्तिनापुर (प्राचीन दि.जै. बड़ामंदिर) गुरूजी के पास गया था तब उनसे मिले किंचित् प्रकीर्णक समाधान :- (मार्च १९८८ ई.)

**समाधान ३२** - (धवल ६/२७ सूत्र १४ की टीका) "अवधिज्ञान में प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान समस्त पर्याय विशिष्ट वस्तु का ज्ञान पाया जाता है।" इस पंक्ति का खुलासा यह है कि अवधि ज्ञान को अनन्त अर्थ पर्यायों का ज्ञान नहीं होता। अतः हमें तो ऐसा लगता है कि वर्तमान समस्त पर्यायों का भी ज्ञान अवधिज्ञानी को नहीं होता, अतः भगवद् वीरसेन स्वामी का यह कथन विचारणीय है। (दि. १७-३-८८)

**समाधान ३३** - धवल ७ सूत्र ९९ की टीका पृ. २१८ - "२ छासठ सागरों के भीतर मित्यात्व का काल", ऐसा जो वहाँ लिखा है वहाँ भीतर = अन्त में, ऐसा अर्थ जानना।

**समाधान ३४** - (धवल ७/३८१ सूत्र २३) "यहाँ ४५ लाख योजन वाले तिर्यक् प्रतर मात्र आकाश प्रदेशों में स्थित मनुष्य बताये", सो यहाँ तिर्यक् प्रतर से "वर्गराजू" अर्थ न लेकर इतना ही अर्थ लेना कि ४५ लाख योजन व्यास वाला विस्तृत क्षेत्र।

ऊँचाई तो मनुष्य क्षेत्र की एक लाख योजन प्रमाण अकथित भी जान लेनी चाहिए। (दि. १८-३-८८)

**समाधान ३५** - गणधर ने ग्रन्थ (द्रव्यशास्त्र पुस्तकों) का निर्माण नहीं किया। गणधर ने तो बुद्धि में ही ग्रन्थ रचना की। उन्होंने तो द्वादशांग नहीं रचे। (दि. १८-३-८८)

(नोट - शंका समाधान तो अनेक हुए थे, पर यहाँ वे ही समाधान दिए गए हैं जो सुगम हैं, विवाद के विषय नहीं है। - जवाहरलाल, भीण्डर, राज.)

५५13

-::-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi